

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180872

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H 82/U 66 T Accession No. G. H. 282

Author उपेन्द्र नारायण 'अदक' ।

Title नूफान से पहले । 1948

This book should be returned on or before the date
last marked below.

तूफ़ान से पहले

(सात एकांकी)

उपेन्द्रनाथ 'अश्व'



नेशनल बुक ट्रस्ट ऑफ इंडिया लिमिटेड, बम्बई.

सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रथम संस्करण १९४८

मूल्य ३ रुपया

नेशनल इन्फ़रमेशन ऐण्ड पब्लिकेशन्स लिमिटेड, नेशनल
हाउस, ६, तुलक रोड, अपोलो बंदर, बम्बई-१, के लिए कुसुम नैयर
द्वारा प्रकाशित और र. दि. देसाई द्वारा न्यू भारत प्रिंटिंग प्रेस,
गिरगांव, बम्बई-४, में मुद्रित ।

माननीय श्री. सम्पूर्णानन्दजी के लिये
सादर तथा साभार

क्रम

१	तूफ़ान से पहले	...	१
२	बहनें	...	३१
३	पापी	...	५३
४	नया पुराना	...	६९
५	बेइया	...	८७
६	तौलिये	...	१०९
७	पक्का गाना	...	१३७

परिचय

दिसम्बर १९३६ में लम्बी बीमारीके पश्चात् अपनी पहली पत्नीकी मृत्यु के अवसरपर कुछ घटनाओं का अश्कजी पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि उन्होंने अनायास 'पापी' और 'लक्ष्मी का स्वागत' दो एकांकी लिख डाले ! तब से लेकर अश्कजी निरन्तर एकांकी नाटक लिख रहे हैं। यह ठीक है कि उन्होंने 'जय-पराजय' के रूप में लम्बा ऐतिहासिक नाटक भी लिखा है जो बड़ा सफल सिद्ध हुआ किन्तु 'जय-पराजय' के बाद उनकी प्रवृत्ति पुराने दंग के लम्बे नाटक लिखने की अपेक्षा आधुनिक दंग के छोटे नाटक लिखने की ओर अधिक रही है। उनमें भी एकांकी और झांकी लिखना उन्हें विशेष प्रिय रहा है।

इन दस वर्षों में अश्कजी ने सामाजिक, राजनीतिक, मनोवैज्ञानिक, सीधे और सांकेतिक सभी तरहके एकांकी लिखे हैं। उर्दू में उनके चार एकांकी संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं और पांचवाँ प्रेस में है, किन्तु कई कारणों से हिन्दी में 'देवताओंकी छाया में' के बाद उनका कोई एकांकी संग्रह प्रकाशित नहीं हो सका। प्रस्तुत संग्रह के नाटक चुनने में मैंने इस बात का प्रयास किया है कि इस में सभी तरह के नाटक पाठकों की सेवा में उपस्थित किए जा सकें। सरलता के विचार से मैंने सांकेतिक नाटकों को छोड़ दिया है, (जो उतने बोधगम्य नहीं और जो एक अलग संग्रह 'चखाहे' में संकलित किये जा रहे हैं) किन्तु इस, का ध्यान मैंने रखा है कि प्रस्तुत संग्रह के नाटक सरल होने के साथ उत्कृष्ट भी हों और मनोरंजन के साथ भिन्नताका आभास भी दिलाएँ।

इसी उद्देश्य को सामने रखकर जहाँ मैंने अश्कजी का दस वर्ष पूर्व लिखा एकांकी 'पापी' संकलित किया है, वहाँ पिछले वर्ष लिखा 'तूफान से पहले' भी ले लिया है। संग्रह में जहाँ पाठक को 'पक्का गाना' के रूप में साहित्यिक वेराइटी [Literary Variety] देखने को मिलेगी, वहाँ 'नया पुराना' में समस्या मूलक प्रहसन भी; न केवल सुखद अथवा दुखद नाटक देखने को मिलेंगे, बल्कि ऐसे भी जिनकी ट्रेजेडी में कामेडी और कामेडी में ट्रेजेडी है।

अश्कजीने नाटक मुख्यतः रंग मंच के लिये लिखे हैं, इन में से कुछ बड़ी सफलता से खेले भी गये हैं, किन्तु इन में से कुछ का रेडियो संस्करण आल इंडिया रेडियो के भिन्न स्टेशनों से ब्राडकास्ट भी हुआ है। "पापी" तो रेडियो पर इतना लोक-प्रिय हुआ कि न केवल दो बार इन्टर-स्टेशन-प्ले के रूप में ब्राडकास्ट किया गया, अर्थात् एक साथ सभी स्टेशनों से ब्राडकास्ट हुआ, बल्कि आठ दस बार पृथक् रूप में समय समयपर भिन्न स्टेशनों से भी ब्राडकास्ट हुआ। 'पापी' की नाटकीयता, बोधगम्यता, मनोरंजकता और पदलालित्य पाठकोंको संग्रह के सभी नाटकों में मिलेगा।

बीमारी और व्यस्तताके कारण हम स्वयं इस संग्रह के प्रूफ नहीं देख सके। काफी अशुद्धियाँ रह गई हैं आशा है उदार पाठक हमारी विवशता को देखते उन्हें क्षमा करेंगे और इस त्रुटि के बावजूद नाटक उनका यथेष्ट मनोरंजन करेंगे।

पंचगनी

१२।१२।४७

कौशल्याअश्क

इन नाटकों के अधिकार लेखक के पास सुरक्षित हैं। उसकी आज्ञा के बिना न इन्हें खेला जा सकता है, न ब्राडकास्ट किया जा सकता है और न इन्हें किसी फिल्म के काम में लाया जा सकता है।

तूफ़ान से पहले

पात्र :

घीसू	मां
रामू	मुलिया
शिबू	पारो
बदरी	
न्याज़मियाँ	
हयात अल्लाह	
गिरधारी दादा	
बख्शू	
दो शहरी हिन्दू, दो पठान और दूसरे भैरवे	

समय :

सितम्बर, १९४६

वक्त :

शाम

[पर्दा उठने पर ताड़ के पत्तों से छायी हुई एक झोपड़ी दिखाई देती है। झोपड़ी की दीवारें सरकंडों की बनी हुई हैं, जिन्हें गोबर और मिट्टी से लीपकर इस योग्य बना लिया गया है कि वर्षा के पानी से झोपड़ी के वासियों को यथासम्भव शराबोर होने से बचा सके।

झोपड़ी की छत इतनी नीची है कि झुके बिना इसके बरामदे अथवा अन्दर की कोठड़ी में प्रवेश करना असम्भव है। सड़क से देखनेवाले को इस झोपड़ी की कोठड़ियों के आधे किवाड़ ही दिखाई देते हैं, क्योंकि शेष ढालुवी छत की ओट में छिप जाते हैं।

बरामदे के मध्य एक पुरानी सिंगर-मशीन रखे घीसू कपड़े सी रहा है। उसके आसपास कपड़े बिखरे पड़े हैं। सामने दीवार के साथ एक साधारण-से अनघड़ रैक पर कुछ किताबें और कपड़ों पर एक समाचार पत्र के पृष्ठ भी पड़े हैं।

उसके बाएँ हाथ को, कोठड़ी के आगे, एक चौकी पर कत्था, चूना और मसाला सजाए उसकी पत्नी, मुलिया, एक ग्राहक के लिये पान बना रही है। घीसू के दाएँ हाथ को एक झिलंगा पड़ा है जिसके पास घीसू की लड़की, पारो, औ बराबर की दरगाह के मज़ावर, न्याज़मियाँ, का किशोर बेटा-बछ्शू “कटम कटउआ” खेल रहे हैं—पारो उठकर भागने की राह देख रही है और बछ्शू, इस ताक में है कि वह उठे और वह छुए।

और भी दाईं ओर को, बरामदे की दायी दीवार के साथ, एक भैंस बँधी हुई जुगाली कर रही है। उसके पीछे, सामने की दीवार के दाये कोने में एक और कोठड़ी है जिसमें वर्षा के कारण भैंस की सानी के लिये भुस भरा रखा है।

तूफ़ान से पहले

मुलिया के पीछे जो कोठड़ी है उसके अंधकार में, दरवाज़े के बराबर को एक खाट दिखाई देती है, जिस पर मुलिया की बीमार सास पड़ी कराह रही है।

घोसू की झोपड़ी बम्बई की एक निकटवर्ती बस्ती में सड़क के किनारे बनी हुई है। यह सड़क कुछ इतनी रौनकभरी नहीं। इसके इर्द-गिर्द अधिकांश ग्वाले बसते हैं। दायीं ओर लोकल स्टेशन है और बायीं ओर घोड़बन्दर रोड के परे, शहरी बस्ती है और यह सड़क लोकल स्टेशन और शहरी बस्ती के मध्य पुल का-सा काम देती है। इसीलिये लोकल ट्रेन के आने जाने के समय इस पर कुछ रौनक हो जाती है।

घोसू की बस्ती में यद्यपि दूसरी जातियों और व्यवसायों के लोग भी आबाद हैं तथापि इसमें मैथ्या लोगों का बाहुल्य है। ये मैथ्ये उन डेरियों दुग्धालयों या तबेलों में काम करते हैं, जो इस सड़क के इर्द-गिर्द बिखरे हुए हैं और जिनमें पलनेवाली भैंसों के खुरों से वर्षाऋतु में, सड़क से आध आध मील इधर उधर, टखनों तक बिना कीचड़ में धँसे चलना फिरना कठिन हो जाता है। इन डेरियों में से अधिकांश गिरधारी दादा की हैं। “दादा” बम्बई की भाषामें प्यार का शब्द नहीं, भय और त्रास का है, और “मवाली” अथवा “गुंडा” का पर्यायवाची है, किन्तु गुंडे या मवाली के साथ जिस गरीबी और मरभुखेपन का ध्यान आ जाता है, उसका ‘दादा’ शब्द से अधिक संबंध नहीं—क्योंकि बम्बई में लखपती ‘दादा’ भी हैं जिनकी अरदली में अन्य कई दादा उसी प्रकार तत्पर खड़े रहते हैं जिस प्रकार उस अंतर्राष्ट्रीय दादा, हिटलर, की अरदली में गोरिंग और रिबन ट्राप—और जिस तरह उस दादा-महान से दूर दूर रहनेवाले भी डरते थे, उसी तरह यद्यपि गिरधारी दादा का साम्राज्य भी इस सड़क और इसके इर्द-गिर्द फैली हुई डेरियों तक ही सीमित है, फिरभी घोड़बन्दर रोड से परे बसनेवाले

तूफ़ान से पहले

धनी-निधन-सभी उससे डरते हैं और स्टेशन से आते जाते समय उसे 'नमस्कार' करना अथवा एक विवश-सी मुस्कान ओठों पर लाकर, उसका हालचाल पूछना आवश्यक खयाल समझते हैं।

रहे इन डेरियों में काम करनेवाले भैय्ये— तो वे बैलों की भौंति दिन रात गिरधारी दादा की उन्नति और उत्थान की गाड़ी में जुते रहते हैं। तबेलों की सफ़ाई और पशुओं की रखवाली के साथ साथ, इधर दोपहर और उधर आधी रात को उठकर दूध दोहने से लेकर इधर प्रभात और उधर सन्ध्या से पहले-पहले 'ब्रेटर बम्बई' के विभिन्न स्टेशनों तक पहुँचाने का काम भी करते हैं। नींद आती है तो वहीं लोकल ट्रेन की खुर्ची सीटों, प्लेटफार्मों या फुटपाथों पर जूँघ लेते हैं और भूख लगती है तो चने या 'दाल सेव' या 'खारी सींग' खाकर पेट की आग बुझा लेते हैं।

गिरधारी दादा किस तरह इतने सम्पन्न हो गए, इसके सम्बंध में कई किंवदंतियाँ प्रसिद्ध हैं [क्योंकि जब वे बम्बई आए थे तो उनकी जेब में चनो तक के लिये पैसे न थे], लेकिन सबसे प्रसिद्ध कहानी यह है कि पीर कलंदर अली के आशीर्वाद से उन्होंने यह सब धन सम्पत्ति पाई है। इसीलिए पीर साहब की दरगाह जो किसी समय एक टूटी हुई समाधि और एक जर्जर चबूतरे की सूरत में थी, अब गिरधारी दादा की कृपा से पक्की बन चुकी है।

लेकिन यह तो उस समय की बात है जब हिन्दू मुसलमान एक दूसरे के पवित्र स्थानों का आदर करते थे और एक दूसरे के धार्मिक उत्सवों में शामिल होना बुरा खयाल न समझते थे और गिरधारी दादा ने अपना जीवन इसी बस्ती के एक दुग्धालय में एक साधारण भैय्ये के रूप में आरम्भ किया था। अब तो दादा दरगाह की ओर देखना भी पाप समझते हैं और उसके वर्तमान मुज़ावर, न्याज़मियाँ, की बढ़ती हुई लोकप्रियता उनके लिये असह्य है और अपने साम्राज्य में दरगाह का अस्तित्व उन्हें एक कांटे के

तूफान से पहले

समान खटकता है ।

पर्दा उठने के पलभर बाद बैकग्राउंड में गाड़ी के आने की आवाज़ सुनाई देती है । घीसू के हाथ की गति भी तेज़ हो जाती है । मुलिया की चौकी के सामने जो व्यक्ति खड़ा है उसे शायद इसी गाड़ी पर सवार होना है, इसलिये वह जल्दी मचाने लगता है ।]

वह व्यक्ति—गाड़ी आ रही है मुलिया, जल्दी पान दो !

मुलिया—[जल्दी जल्दी पान बनाकर देते हुए] लो !

[राही पान लेकर और पैसे फेंक अंधाधुंध भाग खड़ा होता है । गाड़ी के आने और घीसू की मशीन के चलने की आवाज़ एक दूसरी में घुल मिल जाती हैं । इधर गाड़ी स्टेशन पर रुकती है, उधर घीसू की मशीन खट से रुक जाती है । घीसू जल्दी जल्दी घुमाने का प्रयास करता है, किन्तु मशीन नहीं चलती । वह मशीन खोलकर देखता है और खट से बन्द करके माथे को ठोंक बैठ रहता है ।]

मुलिया—क्यों, क्या हुआ ?

घीसू—[खीजकर] हुआ बुरे का सिर !

[फिर उसी प्रकार उदास और निराश बैठ रहता है । उसकी मां कराहना छोड़ देती है और अपनी चारपाई पर तनिक आगे को खिसक आती है ।]

मां—क्या हुआ बेटा ?

घीसू—[कुछ संयत होकर] कुछ नहीं माँ, फिरकी टूट गई ।

मां—तो ऐसे निराश क्या बैठ गए हो ? और ले आना ।

तूफ़ान से पहले

धीस्—तुम भी अम्मा.....कौन लिये बैठा है मेरे लिये फिरकियाँ ?

[कुछ आकुल होकर खाली मशीन ही चलाने लगता है । बैकप्राउंड में गाड़ी के चलने की आवाज़ आती है.....सड़क पर इक्का-दुक्का आदमी गुज़रने लगते हैं ।

तभी पारो उठकर भागती है कि बूझ उसे छू लेता है ।]

पारो—[उसकी बारी देने को हाथ बढ़ाते हुए] क्यों कितना दौड़ाया ?

बूझ—[उसके दोनों हाथ अपने हाथ में लेता हुआ] अब ज़रा मेरी बार शुरू हुई है, देखना ।

[पारो के दोनों हाथ बाँधकर उसके अँगूठे और उँगलियों के मध्य अपने दोनों हाथों से आरी सी चलता हुआ बूझ गाता हैः]

कटम कटउआ

सागर दउआ

तू मेरी नानी

मैं तेरा नउआ

बैठे को छुएँ कि खड़े को ?

पारो—खड़े को !

[बूझ झट उसके हाथ छोड़कर बैठ जाता है । पारो ज़रा परे छूने को तैयार खड़ी रहती है । बूझ दो-चार बार उठने का भुलावा देकर एक बार जो भागता है तो झिलंगे के कई चक्कर खाने पर भी पकड़ाई नहीं देता । पारो थककर रुक जाती है ।]

हम नहीं खेलते । [जाकर धीस् की गोद में गिर जाती है । बूझ उसे खींचता है ।]

तूफ़ान से पहले

धीसू—[दोनों को ढकेलकर] जाओ उधर खेलो दरगाह में और मुझे तंग न करो ।

पारो—[नहीं जाती, बर्ही चिमटी रहती है ।] बरखू चुटकी काटता है, बापू ।

बरखू—[उसे पूर्ववत् खींचता हुआ] मुझे इतना दौड़ाया और मेरी बारी आई तो बापू की गोद में जा बैठी ।

धीसू—[उसे और भी ज़ोर से ढकेलकर] जा भाग ! मेरी जान न खा ! जा खेल उधर दरगाह में जाकर !

[पारो निमिष भर के लिये अपने पिता के रुद्र-रूप को देखती रहती है । फिर उसकी दृष्टि मूखों की तरह मुँह बाएँ खड़े बरखू पर जाती है और एक चंचल मुस्कान उसके नयनों से निकल उसके सारे मुख को प्रदीप्त करती हुई बिखर जाती है । उछलकर वह बरखू को छू लेती है और “ छू लिया ! ” “ छू लिया !! ” शोर मचाती हुई भाग जाती है । बरखू भी उसके पीछे भाग जाता है ।]

धीसू—[बेजारी से मशीन परे हटाकर समाचार पत्र उठाते हुए] कम्बरलत इस फिरकी को भी आज ही टूटना था । परसों गणेशचतुर्थी है, गिरधारी दादा जान खाजाएँगे—पांचो कुर्ते उनके सिलनेवाले हैं ।

मुलिया—तुम्हें तो गजट बांचने की पढ़ी है । जाकर बदल क्यों नहीं लाते फिरकी ?

धीसू—[समाचार पत्र परे हटाकर] तेरा भेजा बराबर नहीं । फिरकी मिलती है चोर बाज़ार में, और वहाँ आजकल हिन्दू को पा जायें तो काट के दस टुकड़े कर दें ।

[रामू, एक तीस-बत्तीस वर्ष का दृष्ट-पुष्ट युवक, गले में बन्धी, कन्धे पर अँगौछा और घुटनों से ऊंची धोती बांधे स्टेशन की

तूफान से पहले

ओर से तेज़ तेज़ जाता है। इक़्की मुल्लिया के आगे फेंकता है और बात धीसू से करता है। मुल्लिया पान बनाने लगती है।]

रामू—सुना तुने धीसू, मदनपुरे मां आठ भैइयन को क़तल कर डाला इन लीगी मुसलमानों ने।

मुल्लिया—[पान लगाना छोड़कर] अरे कहाँ ? कौन धनी के तबेला मां ?

रामू—उसी पाजी खोजा के तबेला मां, और कहाँ !

मुल्लिया—सत्यानाश हो इन मूंडीकाटे हत्यारे मुसलमानों का ! श्यामू और लकड़िया...

रामू—मारे गए दोनों, एक हरिया बचा, वह भी भीति फाँद के, मुदा घायल वह भी हुआ।

मुल्लिया—बहुतेरा कहा था गिरधारी दादा ने कि मति जाव ह्यां से छोड़ के, पर उन्हें तो ज्यादा पगार का मोह था। बदी को कौन टाले भैय्या ?

मां—[चारपाई पर कुछ और अगे को सरककर] राम ! राम !! इन बेचारों ने किसी का क्या लिया था ? वे गरीब तो हिन्दू मुसलमान दोनों को दूध पहुँचाते थे।

धीसू—[जिसके चेहरे पर और भी गहरा बादल छा जाता है।] गरीब और भोलेभाले ही तो मारे जाते हैं इस फ़िसाद में, अम्मां !

मुल्लिया—ये हत्यारे मुसलमान भी ऐसे ही मारे जायें तो इन्हें भी मालूम हो...

धीसू—वे भी मारे जाते हैं। इस फ़िसाद में तो बेचारे ईसाई और पारसी भी मारे गए।

[मुल्लिया पान लगाकर रामू को दे देती है। कुछ और लोग आ इकट्ठा होते हैं, जिनमें शिबू भी है—गिरधारी दादा का खास जेलम।]

तूफ़ान से पहले

शिबू—[मुल्लिया के सामने इकननी फेंकते हुए] उन मूर्खों से कहा था कि नौकरी छोड़ आओ । [मुल्लिया से] दो पान लगाओ, मुल्लिया !

रामू—एकाएक ही तो भड़की आग, दादा, और फिर उस हरामी खोजे ने कहा, “ तुम लोग हूयां रहो, फाटक बंद रहेगा, कऊ तुम्हारा बार भी बांका न करि सकी । ” मुदा पहले ही हल्ला मॉ खोल दिया कायर ने । बन्द तबेला, चाकू छुरा से लैस इतने मुसलमान, और निहत्थे भैय्या ! अंगअंग काटि के रख दिया निर्दह्यों ने । मेरे तो हिरदे में तभी से आग-सी लग रही है ।

शिबू—भैय्या लोगों को इन पाजी मुसलमानों के तबेलों में कभी नौकरी न करनी चाहिए ।

भीड़ में से एक—सभी उस कायर खोजे-से तो नहीं होते, दादा । उसी मदनपुरे में वह फ़ज़लू पंजाबी भी तो है । पूरे एक दर्जन भैय्या काम करते हैं उसके यहाँ । बार बार गुंडे दल-बल लेकर आए । धमकी दी कि फाटक न खुला तो हम आग लगा देंगे तबेले को...तलवार संतकर निकल आया वह पंजाबी, कि है किसी मर्द के बच्चे में हिम्मत तो बड़े आगे । जान जोखम में डालदी, पर तबेले का फाटक नहीं खोला ।

दूसरा—वह आप दादा है मदनपुरे का । उसके तबेले को आग लगे तो वह सबके घर जलादे ।

शिबू—पर आग में रहकर उसकी लपटों से कै दिन बचा जा सकता है, उनकी भी बारी आजयेगी ।

भीड़ में से तीसरा—भैय्यों को अपनी दलबन्दी करके अपनी रक्षा आप करना चाहिये ।

शिबू—निरी दलबन्दी ही नहीं । अपने भाईयों की हत्या का बदला लेना चाहिए ।

तूफ़ान से पहले

[मुलिया पान लगाकर शिबू को देती है ।]

रामू—मैय्या होत है जैसे बैल । चुप चाप अपनी राह चला जात है ।
किसी से सरोकार नहीं राखत, मुदा कोई छेड़े तो सींग भोंकि देत है !

[पान की पीक सड़क पर थूकता है ।]

शिबू—[पान का बीड़ा कल्ले में रखकर कंधे पर रखे हाथ पोंछते हुए]
सोये हुए सिंह को छेड़ा है इन मुसलमानों ने । आठों मैय्यों की
हत्या का बदला जल्द ही लिया जायगा । [जोश से आगे आगे चलता है ।]

रामू—[उसके पीछे चलते हुए] लिया जायगा और अवश्य लिया जाएगा ।
दादा के पास चलो पहले, शिबू ।

[सभी जोश से रामू और शिबू के पीछे पीछे चलते हैं । घीसू
लम्बी सांस भरकर फिर समाचारपत्र खोल लेता है ।]

मुलिया—[चिंता के स्वर में] न जाने इन लोगों के मन मां क्या है ? कहीं
खून खराबी न करें ?

मां—तू चोर-ओर बाज़ार न जाइयो, घीसू !

मुलिया—न जाने यह मारामारी कब बन्द होगी ?

घीसू—जाने कभी बन्द भी होगी या नहीं ? पांच कुर्ते पड़े हैं और मशीन की
फिरकी टूट गई ।

[फिर समाचारपत्र पढ़ने का प्रयत्न करता है]

मां—[उठकर कराहती हुई उसके पास आ जाती है] निरबल बिछिया सारे
औगुन, कभी फिरकी टूट गई, कभी हथी टूट गई, कभी सुई टूट
गई—अब इस मशीन मां धरा ही क्या है ? पच्चीस तीस बरस तो चल
ली । यह अब बूढ़ी हो गई है, इसे छुट्टी दे ! गजट छोड़; ला एक
कुर्ता मुझे दे, मैं तुरपे देती हूँ ।

तूफ़ान से पहले

धीसू—नहीं मां, तुम आराम करो। अब तुम क्या आँखें फोड़ोगी ? कल सी लूंगा। जान तो लेगा नहीं गिरधारी दादा। इन्हीं लोगों ने तो उठाया है यह सब फितना फिसाद। [फिर जैसे अपने आप से] तबलीग, शुद्धि, दीवाली, मुहर्रम, गाय, बाजे का सवाल हटा तो साला यह झंडों का सवाल आ गया। इन लोगों को तो फिसाद कराने और अपना उल्लू सीधा करने का बहाना चाहिये। न जाने इस देस के बासियों को कब समझ आएगी। अरे भई, एक दूसरे को बुरे लगते हैं तो न लगाओ झंडे !

[बदरी प्रवेश करता है। लम्बा तगड़ा युवक है। एक दफ़्तर में क्लर्क है। राष्ट्रसंघ का सदस्य और भड़कीले स्वभाव का—प्रातः सायं लाठी चलाना सिखाता है।]

बदरी—[मुलिया से] पूना काळा सादा ! [फिर धीसू की झोपड़ी पर एक दृष्टि डालकर, उसे सम्बोधित करते हुए] क्यों जी धीसू, यह क्या हरकत है ? तिरंगा नहीं लगाया तूने ?

धीसू—जिन लगाया है उन कौन तीर मार लिया है, बदरी भैया ?

बदरी—इसमें तीर मारने की कौन बात है ? अपना राज हुआ है तो क्या खुशी न मनायें ? इन साले मुसलमानों ने काले झंडे लगाए हैं, तो हम तिरंगे न लहरायें ?

धीसू—लहराइए, सिर फोड़िये, फोड़वाइए !

बदरी—सिर फुटौवल्ल के डर से हम अपना अधिकार तो नहीं छोड़ देंगे ?

धीसू—[पूर्ववत् समाचारपत्र पर दृष्टि जमाये हुए] अधिकार हमारा कौन लिये जाता है, बदरी भैया। हम झंडे न लगायेंगे तो क्या हमारी बनी सरकार टूट जाएगी ?

बदरी—इन लीगियों ने काले झंडे लगाए हैं...

तूफ़ान से पहले

धीसू—उन्हें दुःख है तो आप उन्हें चिदायें क्यों ? भरा आकाश ही नीचा होता है, भैय्या। आप को राज मिला है, आप ही को नमना चाहिए।

[मुलिया पान पढ़ाती है]

बदरी—तुम्हारी तो मत मारी गई है, [पान लेकर पैसे फेंकता है और पान कले में रखता है] चार भाई जब आकर यहाँ झंडा लगायेंगे तो देखूंगा तुम क्या कर लेते हो ? [टेढ़ी नज़रों से उसकी ओर देखता हुआ चला जाता है।]

मुलिया—मति तो नहीं मारी गई तुम्हारी ? जल में रहे क्या, और मगर ते बैर क्या ? जब वे कहते हैं तो लगा कोह नहीं लेते झंडा ? पहले तो बात बात में लगाते थे तिरंगा।

धीसू—मति तुम्हारी मारी गई है। झंडा लगाने में मुझे क्या आपत्ति हो सकती है ? पर मुसलमान इससे चिढ़ते हैं।

मुलिया—झंडा मुसलमानों का भी तो है। तुम्हीं कहते थे कि इसमें हरा रंग उनका है।

धीसू—वह तो है। पर बहुत से मुसलमान नहीं मानते। वे इस जीत को अपनी हार समझते हैं। उनके लीडर अंटसंट भाषण देते हैं। भड़के हुए तो वे हैं ही। मैंने यहाँ तिरंगा लगाया और बराबर की दरगाह में किसी ने चिढ़कर काला झंडा लहरा दिया तो ? भैय्यों के तेवर तो तुमने देखे ही हैं; खून हो जायेंगे यहीं।

मुलिया—हो जायँ। इन मुसलमानों को भी पता चले कि भैय्यों का लहू इतना सस्ता नहीं।

[धीसू समाचार पत्र फेंककर क्रोध भरी दृष्टि से मुलिया की ओर देखता है और भरे हुए गले से चिल्लाता है “ मुलिया ! ” स्टेशन की ओर से न्याज़मियों दो पठानों को साथ लिये आते हैं। धीसू उनका अभिवादन करता है।]

तूफान से पहले

घीसू—आइए, आइए, न्याज़मियाँ ! [चारपाई घसीटकर उनके आगे करते हुए]
कहिए, किधर से आ रहे हैं ?

न्याज़मियाँ—शहर से आ रहा हूँ, भाई ! [साथी पठान युवकों की ओर इशारा करते हुए] इन बच्चों को लेने गया था ।

घीसू—क्या हाल चाल है शहर का ?

न्याज़मियाँ—अरे भाई, क्या हाल चाल पूछते हो ? तुमसे क्या छिपा है ? सभी कुछ तो आ जाता है अखबारों में । भाई को भाई काट रहा है । फ़िसाद तो हिन्दू मुसलमानों में पहले भी हुए, लेकिन ऐसा भयानक और खूनी फ़िसाद पहले कभी नहीं हुआ । [एक दो क्षण खांसते हैं ।] कलकत्ते का हाल तो तुमने पढ़ा ही होगा । नन्हे मासूम बच्चों के सीने में छुरे भोंके गए । औरतों की छातियाँ काटी गईं । बेकसूर बच्चे-बूढ़ों को चार-चार मंज़िले मकानों के नीचे फेंका गया, ज़िन्दा जलाया गया ।

घीसू—कलकत्ते में जो हुआ वही बम्बई में भी हो रहा है ।

न्याज़मियाँ—[एक पठान युवक की ओर संकेत करते हुए] इस रमजू का बूढ़ा बाप यहाँ गिरगाम में एक सेठ के यहाँ चौकीदार था, छुट्टी पर गया हुआ था । लौटने पर उसे तो मालूम था नहीं कि यहाँ भाई भाई के लहू का प्यासा है । वह सीधा चला अपने सेठ के यहाँ । रास्ते में पत्थर मार मार कर मार डाल ज़ालिमों ने । इससे भी जी न भरा तो छुरों से उसकी तड़पती लाश को ज़ख्मी किया और दुःख इस बात का है कि औरतें और बच्चे अपनी खिड़कियों से देखते थे और खुश होते थे ।

घीसू—[लम्बी साँस भरता है ।] भोले भाले लोगों के दिलों में बिस भर दिया गया है, न्याज़मियाँ !

तूफान से पहले

न्याज़मियाँ—यह लोग नहीं जानते कि किसी जगह एक हिन्दू मारा जाता है तो दूसरी जगह एक मुसलमान की कब्र तैयार होती है। अगर किसी जगह एक मुसलमान के छुरा भोंका जाता है तो दूसरी जगह एक हिन्दू खंजर का शिकार होता है। ये लोग क्यों नहीं समझते ? सरकार क्यों कुछ नहीं करती ? लीडर क्यों कुछ नहीं करते ?

धीसू—सरकार यही चाहती है और लीडर बिहारी को देखकर भी कबूतर की तरह आँखें बन्द किए हुए हैं। यह सब तो होगा ही।

न्याज़मियाँ—सरकार का क्या जाता है ? मुस में चिंगारी डालकर जमालो तो अलग खड़ी है ! लीडरों का भी क्या जाता है ? अपने दीवानखानों में आराम से बैठे भड़कीले बयान झाड़ देते हैं, उनका आराम और उनकी लीडरी कायम है, मौत तो हम ग़रीबों की है।

धीसू—सारे देश की बदकिस्मती है, बाबा ! आज़ादी की साँस ली नहीं कि भाई को भाई काटने लगा।

न्याज़मियाँ—[लम्बी साँस भरकर माथे को ठोकते हुए] न जाने खुदा को क्या मंजूर है ? मैं तो इन बच्चों को ले आया। इस खूनी फ़िसाद में कम्बख़्ती तो इन लोगों की है। बेचारे चौकीदारी करते हैं—हिन्दू के घर की भी, मुसलमान के घर की भी। आम मुसलमान तो पतलून कोट पहनकर बच जाते हैं। यह पठान बच्चे तो छिप नहीं सकते, मारे जाते हैं।

धीसू—यही हाल हिन्दुओं में भैय्यों का है। आज ही मदनपुरे में आठ भैय्यों की हत्या कर दी वहाँ के मुसलमानों ने।

न्याज़मियाँ—दूधवाले, फेरीवाले, चौकीदार, डाकिये, भोले-भाले राही—यही लोग तो मारे जा रहे हैं इस फ़िसाद में। [उठ कर चलने लगते हैं।]

धीसू—[उनके कंधे पर हाथ रखकर उन्हें रोकते हुए] न्याज़मियाँ [रुक जाते हैं। धीमें स्वर में धीसू कहता है :] मैं कहता था, तुम न दरगाह

तूफान से पहले

पर काला झंडा लगाना बाबा, मदनपुरे में जो भैय्ये मरे हैं उनमें हमारे
श्यामू और लकड़िया भी थे ।

न्याज़मियाँ—इन्ना लिह्लोहे व इन्ना इलैहे राजेऊन ! [लम्बी साँस भरकर]
न जाने इस दुनिया का क्या होनेवाला है ?

घीसू—यहाँ के लोग भी कुछ फिरे हुए हैं बाबा, इसलिए मैंने कहा था कि
काला झंडा.....

न्याज़मियाँ—नहीं भाई, हमें क्या लेना है इन काले-सफ़ेद झंडों से ! कलंदर
साईं इंसान इंसान को बराबर समझते थे । उनकी दरगाह पर हिन्दू
क्या, मुसलमान क्या, सभी आते हैं, और मन की मुरादें पाते हैं ।

घीसू—वह ज़रा ह्यातू का डर था.....

न्याज़मियाँ—जवान लड़का है, भड़कीली तबियत का, और अक्ल नाम को
नहीं, लेकिन तुम चिंता न करो मैं आज ही उसे उसके ननिहाल भेज
दूंगा । [चलते हैं ।]

घीसू—[फिर रोककर] न्याज़मियाँ.....

[न्याज़मियाँ फिर रुकते हैं]

[समीप आकर प्रेमभरे विनीत स्वर में] न्याज़मियाँ, मेरा कहा मानो तो
तुम कुछ दिन के लिए कहीं चले जाओ, बाबा । गिरधारी दादा आज
कल बड़े बगुला भक्त बने हुए हैं । म्यूनिस्सिपैलिटी के लिये खड़े होने जा
रहे हैं अगली बार, सब जगह बरबस झंडे लगा दिये हैं उन्होंने ।
हालांकि स्वयं महात्मा गांधी ने कहा है कि मुसलमान चिढ़ते हों तो न
लगाओ तिरंगे, पर इस समय उनकी कौन सुनता है ? ये सब
तिरंगे देखकर किसी मुसलमान को जोश आगया और उसने दरगाह
पर काला झंडा.....

तूफान से पहले

न्याज़मियाँ—तुम चिन्ता न करो, घीसू। कलन्दर साह की दरगाह किसी पार्टी का अखाड़ा नहीं बन सकती। हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई—सबके लिये वह खुली है—इस पर कलन्दर साह ही का झंडा झुलेगा, किसी जात, बिरादरी, पार्टी या कौम का नहीं। इस बस्ती के हिन्दू तो हमें अपने भाइयों से भी बढ़कर समझते रहे हैं। [चले जाते हैं।]

घीसू—[वापस आकर अपनी जगह बैठते हुए, जैसे अपने आपसे] लेकिन इस खून-खराबी में तो भाई ही भाई का गला काट रहा है। कौन यह पूछता है कि तुम किस पार्टी में से हो ? बस चोटिया, धोती, डाढ़ी या अचकन देखकर छुरी भोंक देते हैं।

[आकर फिर कुर्ता उठाता है, किन्तु फिर उसे रखकर समाचार-पत्र हाथ में लेता है। पर कुर्ते सीने अथवा पत्र पढ़ने में उसका मन नहीं लगता। उठता है। जाकर मैस की पीठ पर प्यार से हाथ फेरता है। मैस फेरी लेती है औ कीचड़ में लियड़ी हुई दुम घुमाती है। दूसरे क्षण घीसू की कनपटी से लेकर गरदन तक उस कीचड़ का निशान बन जाता है।]

घीसू—[फिर मैस की पीठ पर प्यार से हाथ फेरकर, दर्द भरी मुस्कान से] तुम में और इन लोगों में कोई अन्तर नहीं ! अपने भला चाहनेवाले को ये बुरा समझते हैं।

[दूर गाड़ी के आने की आवाज़ आती है। दरगाह की ओर से, अर्थात् स्टेशन की भिन्न दिशा से, एक भैया भागा आता है और दो पैसे मुलिया के सामने फेंकता है।]

भैया—तनिक जल्दी मुलिया !

[मुलिया जल्द-जल्द पान लगाती है।]

भैया—[घीसू से] यह तुम क्या मूर्खताई कर रहे हो, घीसू, झंडा कोई नहीं लगाते ? दादा बड़े गुस्सा हो रहे हैं। सभा हो रही है उनके

तूफ़ान से पहले

आँगन माँ । गिरगांव से उनकी मंडली भी आई हुई है । श्यामू और लकड़िया की हत्या ने हिला डाला है दादा को । तुम्हें बुलाया है उन्होंने सभा मां ।

धीसू—मुझे नहीं जाना उस सभा में ।

भैय्या—तुम जानों, मुदा हम कहे देत हैं, गुस्सा बहुत खराब है दादा का ।

[मुलिया पान बना कर देती है । उसे कले रखता हुआ वह भाग जाता है ।]

धीसू—[कुतें से कनपटी का दाग पोंछते हुए] दादा और उनकी मंडली... न जानें संसार में इन दादाओं का कब अंत होगा !

[फिर जाकर कुतें सीने का प्रयास करता है; पर काम में उसका मन नहीं लगता । मां बराबर कुतें सीती रहती है । एक कुर्ता उठाकर मुलिया को देती है ।]

मां—मुलिया ले, धीसू के तो चूतड़ नहीं टिकते । एक तू सी दे । दादा सिर हो जयगा । [धीसू से] देख बेटा, दादा जो कहत हैं, करले । उनसे बैर मोल लेकर हम ह्यां कितने दिन रहि सकत हैं ? झंडा लगाए ते जो कोई हमें मारने आएगा तो दादा के ह्यां रहते, क्या वह बचकर जाएगा ?

धीसू—तुम तो पागल हो । हमें कोई क्या मारेगा ? पर ये सब झंडे लगाकर जो इन लोगों को चिढ़ाया जा रहा है, इससे फ़िसाद तो हो सकता है । हम न मरे, कोई और मरेगा । मैं इस हत्याकांड में भाग नहीं ले सकता ।

[समाचार पत्र उठा लेता है और बरामदे के स्तम्भ से पीठ लगाकर पढ़ने लगता है ।]

मुलिया—सारा दिन यह गजट बांधते हो और अपनी से बैर बांधते हो । दादा की डेरियों में काम करनेवाले भैय्यों के बारे में इस गजट में जो

तूफ़ान से पहले

उल्टी-सीधी बातें छपी हैं, जानते हो दादा ने उनको कितना बुरा माना है ? [धीमें स्वर में] उनका सन्देह तुम पर है—जानते हो वे इस गजट को कैसा बुरा जानें हैं ?

घीसू—आत्याचारियों का भंडा तो यह पत्र सब से पहले फोड़ता है—दादा छोड़ चाहें सारी दुनिया इसे बुरा समझे, पर बातें इसकी सीधी दिल में उतरती हैं। इसी खून खराबी को लो—सारे पत्र फ़िसाद की ख़बरें छापते हैं। उन्हें पढ़कर लगता है, जैसे मनुष्य नाम का जीव तो इस संसार से उठ गया है। इसी पत्र को पढ़कर पता चलता है कि नहीं, अभी धरती से मनुष्य का बीज नास नहीं हुआ। इन पशुओं में भी मनुष्य अभी बाकी है। इस फ़िसाद में मुसलमानों ने हिन्दुओं को और हिन्दुओं ने मुसलमानों को बचाया है और कई बार जान जोखिम में डालकर बचाया है।

[न्याजमियाँ का लड़का, हयातुल्लाह, अपने एक युवक साथी के साथ तेज़-तेज़ बातें करता प्रवेश करता है।]

हयातुल्लाह—इन सालों ने यहाँ तिरंगे लगाए हैं। यह बनिये हमें चिढ़ाते हैं। मैं भी मोमिन का बेटा नहीं जो दरगाह पर काला झंडा न लगाऊँ ! इन्हें भी पता चले कि यहाँ काफ़िर ही नहीं बसते, इस्लाम पर मर मिटनेवाले मुजाहिद भी बसते हैं। [तेज़-तेज़ चले जाते हैं।]

घीसू—सुन लिया ! और तू कहती थी क्यों नहीं लगाते तिरंगा ?

[दो हिन्दू तेज़-तेज़ आते हैं। एक मुलिया के आगे दुवन्नी फेंकता है और “दो पान और सिगरेट !” कहकर साथी से बात जारी रखता है।]

पहला—मैं कब कहता हूँ—वे न लगायें काले झंडे, न करें सरकार का विरोध ? हजार बार करें; पर कुछ दम हो तो कॉंग्रेस की भाँति अँग्रेजों से लड़ें ना, गोरी सरकार का विरोध करें ना, सबें न जेलों में जाकर... ब्रिटिश सरकार से मुक़ाबिले का एलान किया और हिन्दुओं पर फ़िल पड़े—कायरों की भाँति छिपकर किसी ग़रीब मज़दूर, या निरीह भैय्या की

तूफान से पहले

पीठ में छुरी भोंक दी और बड़े मुजाहिद और शहीद बन गए ! यदि वास्तव में काँग्रेस हिन्दुओं की है तो इतनी बार उसने सरकार से मोर्चे लिये, दो-चार मुसलमान तो मारे गए होते ! यह लीगवालों का पहला मोर्चा है और कलकत्ते में सहस्रों निर्दोष मौत के घाट उतर गए और बम्बई में उतर रहे हैं । ये गोरी सरकार के गुर्गे हैं, गुर्गे !

दूसरा—वे लोग काँग्रेसियों पर कहाँ अभियोग लगाते हैं ?

[मुलिया पान बनाकर देती है । पहला कले में रखता है ।]

धीसू—[समाचार पढ़ते हुए जैसे अपने आप से] दोनों गोरी सरकार के हाथ में खेल रहे हैं ।

पहला—[पान चबाते और सिगरेट ओठों के कोने में रखते हुए] अँग्रेजों की तो छाया से दूर भागते हैं और निहत्थे हिन्दुओं की पीठ में छुरे भोंकते हैं... यह आज कालबादेवी में क्या हुआ ? टैक्सी में मशीनगन रखकर बेगुनाह लोगों पर गोली चलाते गए ! वह दस बरस की लड़की ! वह क्या काँग्रेस में थी और वे हिन्दू जुलाहे जिन्हें हिटलरी बर्बरता से इन कसाइयों ने उनकी शोपबियों में जीवित जला डाला, जिनके भागते हुए बच्चों को लाठियाँ मार मारकर फिर आग में झोंक दिया, क्या वे काँग्रेसी थे ? पिछले फ़िसादों के भूले हुए हैं ये मुसलमान; समझते हैं, गाजर-मूली की तरह हिन्दुओं को काट देंगे ! लेकिन मैं बता दूँ—हिन्दुओं ने भी अपना संगठन कर लिया है । छः बरस से हमारा राष्ट्र-संघ हमें इन कसाइयों के हाथों से अपनी माओं-बहनों की इज्जत बचाना सिखा रहा है । अब यदि एक हिन्दू के छुरा लगा तो दस मुसलमानों के छुरे भोंके जाएँगे, एक हिन्दू बच्चा मारा गया तो दस मुसलमान-बच्चे मौत के घाट उतारे जाएँगे, एक हिन्दू देवी का अपमान हुआ तो दस मुसलमान स्त्रियों की बेइज्जती की जाएगी !

[मुलिया दूसरे को भी पान-सिगरेट देती है और दोनों जोश में बातें करने चले जाते हैं ।]

तूफान से पहले

घीसू—हिंसा...हिंसा...हिंसा...इन सबके सिर पर यह कैसी हिंसा सवार है ! इन्हें कौन बताये कि यह हिंसा तो अपना ही गला काटने के बराबर है ? मुसलमान बच्चों की हत्या क्या अपने बच्चों की हत्या नहीं ? मुसलमान औरतों का अपमान क्या अपनी मा-बहिनों का अपमान नहीं ?

माँ—[कराहती हुई उठती है ।] मैं कहती हूँ, घीसू, थोड़े दिन को अपने गाँव क्यों न चले जाएँ ? ह्यां तो जिसे देखो उसके सिर पर .खून सवार है ! [कराहती हुई फिर जाकर चारपाई पर लेट जाती है ।]

मुलिया—पारो के बाबू हम तो इसी घड़ी ह्यां से चल देंगे ।

घीसू—कहाँ चल देंगे ?

मुलिया—अपने गाँव, और कहाँ ?

घीसू—वहाँ क्या मुसलमान नहीं, या ऐसे हिन्दू नहीं ? देश में ऐसा कौन-सा गाँव है जहाँ हिन्दुओं के साथ मुसलमान, या मुसलमानों के साथ हिन्दू नहीं बसते ? आग जो नगरों में लगी है, उसकी लपटें क्या देहात में न पहुँचेंगी ? [फिर जैसे अपने आप से] छः बरस लड़ाई रही । नगर तो दूर, किसी गाँव तक में फ़िसाद नहीं हुआ । अब महामारी की तरह यह मारामारी शहर-शहर क्यों फैल गई ? ब्रिटिश सरकार जब चाहती है कि भाई से भाई लड़े और उसकी सेना के पाँव हिन्दुस्थान में जमे रहे तो क्यों न यह सब .खून-खराबी होगी ? [फिर मुलिया से] भाग-कर इससे जान न बचेगी, मुलिया !

मुलिया—तुमसे कौन माथा फोड़ेगा । दो अच्छर क्या पढ़ गए हो, गांधी बाबा के कान काटते हो ! बस तुम्हीं एक जानपाड़े हो, बाकी सब नेता तो जानों मूरख हैं ! तुम रहो ह्यां । मैं तो अपनी बच्ची को लेकर आज ही चली जाऊँगी ।

तूफान से पहले

[पारो भागी-भागी आती है ।]

पारो—बापू.....बापू.....हमें एक काला पटुका दो.....

मुलिया—काला पटुका.....काला पटुका क्या करेगी रे.....?

पारो—हम भी काला झंडा लगायेंगे । बरूझू लगा रहा है काला झंडा अपने घर मां ।

धीसू—धत् पगली.....चल बैठ उधर !

[पारो अनमनी-सी जाकर दीवार के साथ बैठ जाती है और फिर अवसर देखकर भाग जाती है । मुलिया लालटेन लाकर उसे जला कर लटकाती है । घोड़बन्दर रोड की ओर से कुछ लोग बातें करते आते हैं । शिबू उन सब से आगे है ।]

शिबू—यह भैया लोगों का गुण है, भाई ! तब चौंकते हैं जब पानी सिर से गुजर जाता है । अपने गिरधारी दादा और उनकी यह गिरगांव की मंडली जो कुछ आज कर रही है, यदि कुछ दिन पहले करती और न्याज़मियाँ और उसके उस सिर फिरे बेटे को बुलाकर डाट देती तो कभी इसकी नौबत भी न आती ।

[धीसू के बरामदे से झिलंगा घसीटकर उस पर बैठ जाता है, शेष कुछ लोग उसके इर्द-गिर्द बैठ जाते हैं और कुछ खड़े रहते हैं ।]

आज भी बुला कर यह फैसला कर लिया तो अच्छा रहा...आप लोग और दो दिन चुप रहते तो किसी दिन देखते कि आप की झोपड़ियाँ जली पड़ी हैं और आपके बीबी-बच्चे छुरों से घायल तड़प रहे हैं । बड़े जालिम और कायर हैं ये लोग !

दूसरा—कुछ भी हो हम न्याज़मियाँ को ऐसा न समझते थे ।

तीसरा—अरे, वह एक ही हुरामी है ! दो पठान वह आज भी लाया है । मैंने इन अपनी आँखों से देखे हैं ।

तूफान से पहले

चौथा—और वह हयातू...वह उसका सिरफिरा लड़का—कल मेरे सामने उसने हाथ-भर का छुरा खरीदा। मैंने पूछा—“क्या करोगे इतना बड़ा छुरा खरीदकर ? सरकार पकड़ लेगी।” कहने लगा—“बक़रे ज़िबड़ करूँगा और काफ़िरों की इस सरकार की ऐसी की तैसी !”

शिबू—[क्रोध से एक हुंकार भरकर] हूँ, हमको वह बक़रे समझ रहा है ! लेकिन बेटा को पता चल जाएगा कि बक़रे सिंह भी बन जाया करते हैं ! वह करे पठान इकट्टे.....

धीसू—[जो इस बीच में बराबर आगे बढ़कर कुछ कहने का प्रयास करता है ।] अरे भाई, वे पठान तो चौकीदार हैं। उधर से डरकर इधर आ गए हैं।

पहला—जी हाँ, चौकीदार हैं ! जब यहाँ तुम्हारा और तुम्हारे बीबी-बच्चों का गला काटेंगे तो पता लगेगा...।

पाचवाँ—[जो इस बीच में बराबर सड़क पर खड़ा देख रहा था] अरे, वह देखो, हयातू दरगाह पर काला झंडा लगा रहा है !

शिबू—[जैसे रबड़ के तार के खिंचाव से उचककर झिलंगे से सड़क पर जा खड़ा होता है ।] मैं न कहता था.....और उधर दादा भी सारी आबादी इकट्ठी कर लाये हैं !

[सभी उछलकर सड़क में आ खड़े होते हैं ।]

है किसी की हिम्मत कि गिरधारी दादा आज्ञा दें और वह हुंकार कर दे ! दादाओं के दादा हैं अपने गिरधारी दादा ! हर-हर महादेव !

[सामने से भी ‘हर-हर महादेव !’ का शोर होता है, जो क्षण प्रति क्षण समीप आता जाता है ।]

इस हयातू के बच्चे को भी मालूम होगा कि हिन्दू बक़रे ही नहीं जो हर फ़िसाद में ज़िबड़ किए जायें ! वे भी सिंह बन सकते हैं।

तूफ़ान से बहले

घीसू— इस समय तो दोनों गीदड़ हैं ।

[लेकिन कोई उसकी बात नहीं सुनता । पहला जोश से ‘ हर-हर महादेव ! ’ का जयकारा बोलता हुआ आगे बढ़ता है । शेष उसका अनुकरण करते हुए उसके पीछे जाते हैं । घीसू सड़क में आ खड़ा होता है ।]

[निमिष भर के लिये सड़क में खड़ा देखता रहता है ।] अरे ये लोग दर-गाह को आग लगाना चाहते हैं । न्याज़मियाँ बेचारे.....

[समाचार पत्र बरामदे में फेंककर भागता है ।]

मुलिया—[अपनी चौकी से छल्लोंग लगाकर सड़क पर भाती है ।] तुम पराए के फटे मां क्यों पैर डारो हो ? मरने दो इन पापियों को !

[उसके पीछे जाती है । कहती और—“ बेटा...बेटा...बहू...बहू ” पुकारती हुई; उल्टे पछार खाती है । इसके बाद कुछ क्षण तक बैक ग्राउंड में प्रतिहिंसा से पागल भीड़ के नारों, जयकारों, मारपीट और गाली-गलौजा का शोर मचा रहता है । स्टेशन पर गाड़ी आकर रुकती है । उधर से भी लोग भागे आते हैं । न्याज़मियाँ के साथ का एक पठान युवक अपनी जान के भय से अंधाधुंध भागा आता है और उसके पीछे हिंसक भेड़ियों की तरह लाठियाँ चाकू और छुरे लिये कुछ भैय्या और दूसरे लोग भागे जाते हैं ।

सहमे और डरे हुए पारो और बख्शू भागे आते हैं और भुस की कोठड़ी में छिप जाते हैं, या यों कहिए कि पारो बख्शू को छिपा देती है । तभी दरगाह की ओर से लाठी चलने की आवाज़ आती है । अपने पीछे न्याज़मियाँ को लिये हुए लोहू में लथपथ घायल घीसू लाठी से आक्रमण करनेवालों के वार बचाता और पीछे हटता हुआ प्रवेश करता है । रामू, बदरी और शिबू आक्रमणकारियों के आगे-आगे हैं । साथ साथ सहमी, डरी, रोती मुलिया भी है ।

तूफ़ान से पहले

रामू के भरपूर बार से धीसू की लाठी गिर जाती है और वह न्याज़-मियों को शोपड़ी के स्तम्भ और अपने मध्य लेकर सब के सामने छाती तानकर खड़ा हो जाता है ।]

रामू—क्यों अपनी मौत बुला रहे हो धीसू ? छोड़ो इस मलेच्छ को और जहाँ इसके साथी गए हैं, वहीं इसे भी जाने दो !

धीसू—तुम लोग नहीं जानते तुम क्या कर रहे हो ?

शिम्बू—[उछलकर आगे बढ़ते हुए] हम अच्छी तरह जानते हैं हम क्या कर रहे हैं !

बदरी—इनके लिये हम काफ़िर हैं और हमें मारना इनके महज़ब-धर्म में सबाब है । इनके लीडर काफ़िरो को मारने की प्रेरणा करते हैं और काफ़िरो को मारनेवाले गुंडों को शहीदों का दर्जा देते हैं । हमारे लिये भी ये मलेच्छ हैं और इन्हें यम के घर पहुँचाना महापुण्य है ।

धीसू—कोई काफ़िर नहीं, कोई मलेच्छ नहीं । सब इंसान हैं । सब भाई-भाई हैं !

न्याज़मियाँ—इस बूढ़े के लिये क्यों मरते हो धीसू ? तुम इन्हें अपनी प्यास बुझाने दो । मैं अब जीकर करूँगा भी क्या ?

धीसू—[न्याज़मियाँ की बात का उत्तर न देकर पूर्ववत् रामू और बदरी से] इस बुढ़े ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है ?

बदरी—भेड़ी बाज़ार के अनगिनत बच्चे-बूढ़ों ने मुसलमानों का क्या बिगाड़ा था ?

न्याज़मियाँ—मुसलमानों के इलाकों में हिंदुओं के साथ यही हो रहा है । अपने गुनाहों का फल हमें भोगना होगा । तुम क्यों नाहक अपनी जान देते हो, धीसू ?

रामू—तुम हट जाओ, धीसू, नहीं तो.....

तूफान से पहले

घीसू—[सीना तानकर] तुम न्याज़मियों को क़त्ल करना चाहते हो । तुम नहीं जानते कि २२ के फ़िसाद में इसी फ़कीर ने एक क़ाफ़िर के बच्चे को मुसलमानों के पंजों से बचाया, पाला-पोसा और परवान चढ़ाया और बड़ क़ाफ़िर तुम्हारे सामने खड़ा है ! उसकी लाश से गुज़रकर ही तुम इसको ले जा सकोगे !

[उसी क्षण गिरधारी दादा का फेंका हुआ छुरा घीसू के सीने में आ लगता है और घीसू आधा सड़क और आधा बरामदे में गिरता है । मुलिया और चीख़ मारकर उस पर गिरती है । दूसरे क्षण गिरधारी दादा सामने आता है । न्याज़मियों को घसीटकर अपने साथी को देता है और दूसरे क्षण बैक प्राउंड में न्याज़मियों के गिरने के साथ उनकी आवाज़ ...“ .खुदा तुम्हें नेक हिदायत दे ! ”...वायु-मंडल में गूँज जाती है ।]

गिरधारी—[श्वेत घीसू की ओर देखते हुए] लातों के भूत बातों से भी माना करते हैं ? इतने ज़ने मुँह बाए तक रहे थे और यह पटर-पटर बके जा रहा था ! [नेपथ्य की ओर देखकर] क्यों कर दिया सफ़ाया उन सब पाजियों का ?

[सभी जाते हैं । गिरधारी दादा एक ठोकर घीसू के लगता है ।]

बड़ा हिमायती बना फिरता था न्याज़मियों का ! देख लिया ना गिरधारी दादा से बैर मोल लेने का मज़ा !

[उपेक्षा से घीसू की ओर देखकर चलता है । घबराया हुआ रामू वापस भागा आता है ।]

रामू—दादा, श्यामू और लकड़िया तो चले आ रहे हैं ! आर आपने कहा था.....मदनपुरे मां तो कोई भैया नहीं मरा ।

गिरधारी—हमें सबेरे ही फ़ोन आया था । किसी ने योंही उड़ा दी होगी !

रामू—[पछतावे के साथ] तो यह सब कुछ योंही हुआ ?

तूफ़ान से पहले

गिरधारी—जो हुआ, अच्छा हुआ। मदनपुरे में न सही तो भेंड़ी बाज़ार और रहमान गली में बीसियों भैय्ये क़त्ल हुए। इससे पहले कि शत्रु तुम्हारा गला काटे तुम उसका टेंदुवा दबाओ ! भैय्ये तो तब तक न चौंकते जबतक वह हयातू उनके सीनों में छुरा न भोंकता। सुस्त बैलों को चलाने के लिये उनकी दुमों पर चुटकी काटनी पड़ती है। इस बस्ती के भैय्यों को भी इसकी ज़रूरत थी। क्या हयातू ने छुरा न खरीदा था...? क्या वह पाजी बुढ़ा पठान इकट्ठे न कर रहा था... तो चलो...!

[उपेक्षा से घीसू की ओर देखकर चला जाता है।]

मुलिया—[उठकर चीख़ते सिर और पीटते हुए] और इस झूठी ख़बर पर तुम पापियों ने यह हत्याकांड मचा दिया ! [माथे पर दोहलथड़ मारती है और घीसू से लिपटकर कहती है।] कहा न था जल में रहकर मगर से बैर न कर ! अब हमें किस के सहारे छोड़ कर जा रहा रोती है।]

घीसू—[आँखें खोलता है। उठना चाहता है, पर उठ नहीं सकता।] बड़े कष्ट से ज़बान ओंठों पर फेरकर कहता है।] रोककर मेरे रास्ते को कठिन न बना, मुलिया ! यह रोने की नहीं, खुश होने की बात है। तेरा पति अपने निदोंस भाई की पीठ में छुरा भोंकते हुए, या अपने भाई के बच्चे का गला काटते हुए नहीं मर रहा; वह मर रहा है अपने भाई की रक्षा करता हुआ उसके कुटुम्ब को बचाता हुआ !

[फिर बेहोश हो जाता है। कुछ व्यक्ति हयातू के शव को उठाए हुए लाते हैं। साथ-साथ गिरधारी दादा भी हैं।]

गिरधारी—लिया दो इस पाजी को इसके पहलू में ! जानते हो तुम सबको क्या बयान देना है ?

रामू—यही कि हयातू ने काला झंडा लगाया तो घीसू ने उसे टोका। इस पर हयातू और पठान छुरे लेकर दौड़े और मारामारी हो गई। हयातू ने घीसू को मारा।

तूफान से पहले

गिरधारी—हाँ ! हयातू ने धीसू को मारा ! [मुलिया से] जानती है, मुलिया, तुझे पुलिस को क्या बयान देना है ? यदि तुझे अपनी और अपनी बच्ची की जान प्यारी है तो कान खोलकर सुनले—धीसू ने हयातू को काला झंडा लगाने से रोका और हयातू ने धीसू के छुरा भोंका। एक शब्द भी इधर-उधर किया तो जीती गड़वा दूँगा धरती में ! जानती है गिरधारी दादा को ! [अपने साथियों से] देखो सड़क के दोनों ओर पहरा लगा दो। कोई इधर न आने पाये। पुलिस आती होगी, मैंने फोन कर दिया है।

[बदरी भागा आता है।]

क्यों मिला बख़्श ?

बदरी—सब जगह ढूँढ़ा है, गिरधारी दादा, कहीं पता नहीं चला। न जानें कौन-से बिल में समा गया ?

गिरधारी—कोई बात नहीं। बिल से निकालकर साँप के बच्चे का सिर कुचला जाएगा। जाओ तुम अपने-अपने पहरे पर। मैं पुलिस को देखता हूँ। इधर कोई न आने पाए। [जाते-जाते मुलिया से] याद रखना, मुलिया, नहीं जीती गड़वा दूँगा !

[सब चले जाते हैं, धीसू फिर बड़बड़ाता है।]

धीसू—आरहा है, मैं देख रहा हूँ, आ रहा है !

मुलिया—[रोते हुए] कौन आ रहा है ?

धीसू—[दाँत पीसकर, उठने का प्रयास करते हुए] एक तूफान आ रहा है ! भयंकर तूफान आ रहा है !! जिसमें ये सब दादे, ये गुंडे, ये धर्म और जात-पाँत के दर्प, ये गरीबों का लोहू चूसनेवाले पूँजीपति, ये भोले-भाले लोगों को लड़वाकर अपना उल्लू सीधा करनेवाले नेता—सब मिट जायेंगे। एक नयी दुनिया बसेगी, जिसमें गरीबों का-मजदूरों का

तूफ़ान से पहले

राज होगा, जहाँ हिन्दू-मुसलमान न होंगे। काले-गोरे न होंगे। सब इंसान भाई-भाई होंगे।

[पारो सहमी-सहमी-सी भुस की कोठड़ी से निकलती है और डरी हुई माँ से लिपट जाती है।]

पारो—मां...

मुलिया—[रोते हुए उसे बाँहों में भर लेती है।] अरी तू कहाँ थी ? देखा तेरे बापू का क्या हाल कर दिया निर्दह्यों ने !

पारो—[भुस की कोठड़ी की ओर संकेत करके] बख़्खू.....

घीसू—[बुझने से पहले दिये की लौ फिर लपक उठती है।] मुलिया ! [उसकी ओर एक विचित्र प्रार्थना-भरी निगाहों से देखता है।] मरनेवाले की एक अमिलाषा पूरी करोगी ?

[मुलिया रोते हुए सिर हिलाती है—“कहो ! ”]

घीसू—बख़्खू को अपने बच्चों की तरह पालना; उसे इन हत्यारों के हाथ न जाने देना।

[मुलिया उत्तर नहीं देती, रोए जाती है।]

घीसू [उठने का प्रयास करते हुए] मुलिया।

मुलिया—[उसके सिर को आराम से धरती पर टिका देती है और सिसकते हुए कहती है।] बख़्खू को मैं अपनी बेटी की तरह पालूंगी, मेरा विश्वास करो !

[घीसू एक बार आँखें खोलकर संतोष-भरी दृष्टि से उसकी ओर देखता है, फिर उसकी आँखें बन्द हो जाती हैं। दूर से रोती हुई माँ की आवाज़ आती है।]

तूफान से पहले

माँ—बेटा.....बेटा.....

[सहसा पर्दा गिर जाता है ।]

स्त्री पात्रों की कमी हो तो माँ के स्थान पर
बूढ़ा दादा हो सकता है । उस रूप में थोड़ी-
सी तन्दीलियाँ ज़रूरी होंगी—लेखक ।

बहनें

पात्र :

रमा

सुहास

निशा

कान्ति

आभा

समय :

सांझ

स्थान :

लाहौर में रमा के घर का कमरा

[कमरा न बहुत बड़ा है, न बहुत छोटा। ड्राइंगरूम या डाइनिंग-रूम भी यह नहीं, शायद सोने का कमरा है, कि इस समय उठने-बैठने, साज-सिंकार करने, सोने और सामान रखने—सब तरह के कमरों का काम दे रहा है। एक ओर दो-तीन टूंक और दो एक सूटकेस रखे हुए हैं, तो दूसरी ओर पलंग बिछा हुआ है; एक कोने में बिस्तरबन्द गोल करके रखा हुआ है तो दूसरे में मैले कपड़ों का ढेर लगा हुआ है। कमरे के मध्य तीन-चार कुर्सियाँ और एक तिपाई रखी है। अँगीठी पर शीशा-कंची और टॉयलेट का दूसरा सामान रखा है। कमरा यद्यपि साफ़ है, फिरभी इस पर भी कुछ ऐसी अव्यवस्था-सी छाई हुई है, जिससे पता चलता है कि जो भी इस कमरे में ठहरा हुआ है अस्थायी रूप से ठहरा है। रोशनदानों के अतिरिक्त दायीं दीवार में एक बड़ी खिड़की भी है।

पर्दा उठते समय रमा अँगीठी के पास खड़ी फाउंडेशन लोशन लगा रही है। तभी बायीं ओर गैलरी में खुलनेवाले दरवाजे पर हल्की-सी दस्तक होती है।]

रमा : [सिंगार करते करते] कौन ?

[दस्तक फिर होती है।]

—कौन ? आ जाइए !

[लोशन छोड़कर पफ़ उठाती है; किवाड़ खुलता है और सुहास प्रवेश करती है।]

रमा : [पाउडर लगाते लगाते मुड़कर] अरे सुहास ! कहाँ अच्छी तो हो ?

[जल्दी जल्दी पफ़ करती है।]

तूफ़ान से पहले

सुहास : [उसके पास आकर उसके कंधे पर हाथ रखते और जैसे अनजाने शीशे में अपना मुख देखते हुए] मैं तो अच्छी हूँ, तुम अपनी कहो, यह चिड़िया कहां से फांस लाई ?

रमा : [पफ़ डिबिया में रखकर तनिक हैरानी से] चिड़िया ?

सुहास : यही अपने हरीश ?

रमा : ओह, हरीश !

[हँसती है और पाउडर की तह जमाकर गालों पर रूज लगाती है ।]

सुहास : कहां हैं वे ?

रमा : [रूज लगाते हुए] रति और रजनी ले गई हैं अपने साथ कि चलो शालामार दिखा लाएं । शशिधर भाई को भी साथ ले गई हैं और निशा बेचारी...

[हँसती है—छोटी छोटी घंटियों के स्वर सी मादक हँसी ।],

सुहास : [कमरे में चक्कर लगाते हुए] तो तुमने अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर दी ?

रमा : [मुड़कर—एक गाल लाल और एक सफ़ेद] प्रतिज्ञा ?

सुहास : [पलंग पर जाकर बैठ जाती है ।] तुम चाहे भूल जाओ, लेकिन मुझे सब कुछ, मानों कल की बात सा, याद है । [उठकर उसके पास आते आते] प्रतिज्ञा की थी न तुमने कि हम तो अपनी रुचि का साथी चुनेंगी ? [दोनों हाथ रमा के कंधे पर रखकर उसकी आँखों में आँखें डालते हुए] ज्यों ही मुझे रति ने बताया कि रमा बहन के साथ एक साहब आए हैं जो ऐसे हैं-वैसे हैं, तो मैं उछल पड़ी कि बस रमा फांस लाई कोई चिड़िया !

रमा : चिड़िया ! [नन्हीं नन्हीं घंटियाँ फिर बज उठती हैं ।] तुम अपनी कहो, [उसकी ठोड़ी में चुटकी काटती है ।] क्या हाल है तुम्हारे उनका, कुछ हिन्दोस्तान की आबादी में.....

बहनें

सुहास : [जवाब में रमा के चुटकी लेते हुए] हिन्दोस्तान की आबादी तो अब तुम बढ़ाओगी ! [फिर हाथ छोड़कर] मैं पूछती हूँ, तुमने इस बात को इतना छिपाकर क्यों रखा ?

रमा : [दूसरे गाल पर रूज लगाते और शीशे में देखते हुए] मेरा खयाल था, जब तक शादी हो नहीं जाती.....

सुहास : भाई मैं तुम्हारे साहस की दाद देती हूँ । बड़ी प्रशंसा करती थी रति भी हरीश बाबू की । उसे तो जैसे प्रेम हो गया है उनसे...

[रूज लगाकर शीशे में देखती है ।]

सुहास : [कुर्सी खिमकाते हुए] बुरा न मानना, ईर्ष्या की हल्की-सी टीस मेरे हृदय में उठी.....कहां तुम और कहां हम ?

[लम्बी सांस लेती हुई कुर्सी में घँस जाती है ।]

रमा : [जो रूज पर हल्की हल्की पाउडर की तह जमाने लगी थी, पफ़ हाथ में लिए लिए उसके पास आकर] क्यों तुम तो.....

सुहास : [सांस को बरबस दबाकर] अब छोड़ो, यह घाव न उधेड़ो, न हमारी ऐसी परिस्थिति, न वातावरण । और भाई सच पूछो तो हममें इतना दम ख़म भी नहीं—पढ़ लिखकर भी हम तो हैं वही बेचारी गाएं...जिसके हाथ माँ-बाप ने रस्ती दे दी...बस उसी के पीछे चल दीं ।

[उठकर फिर चल पड़ती है ।]

रमा : [उसके पीछे पीछे जाते हुए] पर शादी के दिन तो तुम.....

सुहास : प्रसन्न थीं ! [विषाद की हँसी] यही कहना चाहती हो न तुम...तब तो यह भी मालूम न था कि सच्ची खुशी होती क्या है ? [उठकर फिर रमा के कंधे पर दोनों हाथ रखते हुए] एक ही डाली से लगा लगा, ऊबा-उकताया पत्ता जब बयार के एक ही झोंके से गिर जाता है तो अपनी इस मुक्ति पर प्रसन्न, अनजान, अथाह भविष्य के कुहल से भरकर,

तूफ़ान से पहले

अनायास उड़ा फिरता है; [विषाद से मुस्कराती है और हाथ छोड़कर फिर चल पड़ती है ।] नहीं जानता कि उसकी वह मुक्ति मृग-मरीचिका है, उसके भाग्य में तो सूख सूख कर मुरझाना ही लिखा है ।

[जाकर पलंग में घँस जाती है ।]

रमा : [उसके पास जाकर] सुही !

सुहास : और क्या ? [उसी विषैली मुस्कान से] न जानें कितनी लड़कियों के पहली रात ही छिन्न-भिन्न हो जाते हैं ।

रमा : यह तुम क्या कह रही हो ?

सुहास : [बात का रुख बदलकर] अरे भाई, हमारी बात छोड़ो, मैं तुम दोनों की प्रशंसा करती हूँ । [हँसती है...जैसे अपने उस विषाद को उड़ाने के लिए] तुम तो सचमुच हम जैसी कायरों के लिए आदर्श हो । मेरे खयाल में हरीश की तरह शशिधर भी निशा के होनेवाले—

रमा : [भेद भरे स्वर में] यद्यपि हमने किसी को बताया गहीं, फिरभी निशा ने भी अपना जीवन-साथी चुन लिया है । शायद हम दोनों साथ शादी करें ।

[फिर जाकर सिंगार करने लगती है ।]

सुहास : सचमुच हमें जीवन-साथी ही की ज़रूरत है, [उठकर उसके पास आ जाती है ।] हमें स्वामी की ज़रूरत नहीं, जो निरन्तर हमें स्वामि-भक्ति पर लेक्चर देता रहे, या जो हमें चुन चुन कर ऐसी किताबें पढ़ने को दे जिनमें पतिव्रता नारियों का गुण-गान हो और पत्नी का परमेश्वर बताया गया हो ।

रमा : [ओठों पर सुखी लगाते हुए, मुस्कराकर] जो हमें इस लिये दुख दे कि उसे सहकर हम पतिव्रता कहला सकें, [घंटियाँ फिर बजती हैं ।] स्वर्ग में अपने लिए सीट रिज़र्व करा सकें ।

बहनें

सुहास : [कुर्सी पर बैठते हुए] हमें ऐसे स्वर्ग से नरक भला । स्वर्ग किसने देखा है, नरक तो रोज़ देखते हैं; वह नरक इससे बुरा न होगा । अच्छा है तुम इस नरक में नहीं फर्सी ।

[क्षण भर दोनों चुप रहती हैं ।]

सुहास : लेकिन तुमने किया कहां हरीश का चुनाव ? लाहौर में तो...

रमा : [सुर्मेदानी रख कंधी वालों पर फेरते हुए] लाहौर में इतने स्कैंडल [scandal] हो गये थे कि रुचि का साथी पाना लगभग असम्भव हो गया था । इलाहाबाद में ऐसी बात न थी, इसलिए मैं जाते ही सफल हो गई ।

सुहास : सफल तो तुम लाहौर में भी हो जातीं, लेकिन तुम्हारी चंचल प्रकृति.....

रमा : नहीं सुही, मेरी चंचलता का दोष नहीं, लोगों ने सच्ची-झूठी इतनी बातें उड़ा दी थीं कि कोई पास भी न आता था । कोई आता भी तो डरता डरता सा...

सुहास : [हँसकर] दिये की लौ से खिंचकर...

रमा : दिये की लौ से खिंचकर आनेवाले पतिंगे तो डरते नहीं, बे शिक्षक चले आते हैं और अनायास अपने आपको उस जलती, जगती आभा में लीन कर देते हैं । ये आनेवाले तो उस भूखे की भाँति आते थे जो स्वादिष्ट भोजन को देखकर लगकता तो है, पर शिक्षक जाता है कि विषैला न हो !

सुहास : [हँसती है ।] तुम भी रमा...

रमा : [बाळ बनाते बनाते रुककर] या उस मदारी की भाँति जो सांप को मस्त झूमते देखकर एकदम पेटारी में बन्द तो कर लेना चाहता है, पर डर जाता है कि कहीं काट न ले ।

सुहास : सांप ! [हँसती है ।] तुम भी तो रमा...

तूफान से पहले

रमा : लहौर की रमा सांप ही बन गई थी, सुही । नित्य नये स्कैंडल, सगे-सम्बन्धियों का विरोध; सखी-सहेलियों की ईर्ष्या; सफलताओं का उल्लास और असफलताओं की यातना—इन सब ने मिलकर मुझे सांप ही तो बना दिया था । मेरे साथ निर्दोष निशा को भी सज़ा मिली । निंदा हुई सो हुई, ऊपर से मौसी को संदेह हो गया कि उसको भी मैं ही बिगाड़ रही हूँ । [हँसती है ।] गेहूँ के साथ घुन भी पिस गया । तब मैंने सोचा कि लहौर छोड़ देना चाहिए ।

[जल्दी जल्दी जूड़ा बनाती है ।]

सुहास : लेकिन प्रोफ़ेसर जैन तो बुरे न थे...

रमा : अच्छे थे, पर मौसी किसी देवता को भी लातीं तो मैं इन्कार कर देती ।

[जूड़ा ठीक नहीं बँधता, इसलिए झटक देती है ।]

सुहास : मौसी तो तुम्हारे लाभ ही के लिये ऐसा चाहती थीं ।

रमा : मेरा लाभ ! [व्यंग से हँसती है ।] तुम मौसी को नहीं जानतीं, उनकी हर बात में अपना स्वार्थ होता है । कान्त ही से मेरी न टूटती, यदि मौसी उनके कान न भर देतीं । चाहती थीं उसे अपनी निशा के लिए ! निशा को मेरे प्रेम का पता था, वह कैसे कर लेती विवाह कान्त से ? इसीलिए तो निशा को मैं प्राणों से भी बढ़कर चाहती हूँ । मौसी की लड़की होकर भी वह मेरे लिए सगी बहनों से बढ़कर है ।

सुहास : [उठकर कमरे में घूमते हुए] पर सुना था कि मौसी रजनी की शादी करना चाहती थीं कान्त से...

रमा : [माथे पर बिन्दी लग कर] तब रजनी शायद कान्त को पसन्द न थी । मैट्रिक में ही तो पढ़ती थी—लम्बी-सी नाक और गड्डों में धँसे हुए कले—अब निगोड़ी ने कैसा रूप निकाला है ! मुझे तो सच, एक आँख नहीं भाती । [जूड़ा बाँधकर शीशे में देखती है ।] तभी से माँ-बेटी में बैर ठन गया । निशा से मैंने साफ़ साफ़ कह दिया—तुम्हारी माँ मुझे

बहनें

तनिक पसन्द नहीं। तुम्हारे लिये मैं प्राण तक दे सकती हूँ, पर मौसी के लिये तिनका तक नहीं तोड़ सकती। माँ और बहन में से एक को चुन लो, और निशा ने मुझे चुन लिया, मेरे साथ चलने को तैयार हो गई। दबी नहीं घरवालों से।

सुहास : तुम दोनों बहनें ही नहीं हो, सहेलियाँ ही नहीं हो, [ज़रास्त से हँसती है।] इससे कुछ अधिक भी हो ! रति तो कहती थी.....

रमा : अब मैं तुम्हें क्या बताऊँ—जीना दूभर कर रखा है रति और उसकी सहेलियों ने। रति और रजनी दोनों हरि और शशिधर को उड़ाए फिरती हैं... रति इतनी भावुक है कि मैं कुछ कह नहीं सकती उससे। ज़रा सी बात हो तो गज़ भर की थोथनी निकाल लेती है। बी. ए. क्या कर लिया है उसने कि बस किसी को कुछ गिनती ही नहीं। [आकर कुर्सी पर बैठ जाती है।]

सुहास : [उसके पास आकर] कैसे परिचय हुआ इलाहाबाद में तुम्हारा हरीश से ?

रमा : मैंने वहाँ यूनीवर्सिटी में लेक्चररशिप ले ली थी।

सुहास : और बस फांस लिया हरीश को ! क्या करते हैं वे ?

रमा : इसी साल फ़र्स्ट डिवीज़न में उसने एम्. ए. किया है। ऐसी धारा-प्रवाह अंग्रेज़ी बोलता-लिखता है कि उस पर किसी अंग्रेज़ होने का संदेह होने लगता है।

सुहास : रति तो कहती थी कि रंग-रूप में भी अंग्रेज़ मालूम होते हैं—नीली नीली आँखें...

रमा : हरीश की माँ आस्ट्रियन और पिता हिन्दोस्तानी हैं।

सुहास : उनमें तुमने विचारों की एकता पाई ?

रमा : विचारों की एकता ! [आकर उसके पास बैठ जाती है।] हरीश का लालन-पालन प्रायः अंग्रेज़ी ढंग से हुआ है। वह पति की अपेक्षा पत्नी

तूफान से पहले

के अधिकारों पर अधिक ज़ोर देता है। वह नहीं मानता कि विवाह के बाद पत्नी की सत्ता पति में लीन हो जाती है। उसका विचार है कि विवाह के बाद पत्नी को अपनी सत्ता अधुण रखनी चाहिए; उसे अपने व्यक्तित्व को पूर्ण करते रहना चाहिए; स्त्री-पुरुष सागर की दो लहरों के समान हैं, चाहे तो साथ साथ मिलकर एक होकर चले और चाहे तो विलग होकर अपनी अपनी धुन में बहे जाएं।

सुहास : [रमा के दोनों कंधों पर हाथ रखते हुए] कितने ऊंचे विचार हैं ! [दीर्घ-निश्वास भरती है ।] कितने ऊंचे और उदार ! रति ने मुझसे कहा था कि हरीश के विचार बड़े उदार हैं और जब वे उन्हें व्यक्त करते हैं तो उनकी आंखों में एक अपूर्ण चमक आ जाती है ।

रमा : [अपने दोनों हाथ सुहास के कंधों पर रखते हुए] प्रथाओं और परम्पराओं का हरीश पर कोई दबाव नहीं। बन के स्वच्छन्द पंछी की भाँति वह पला और परवान चढ़ा है। जब भी मैंने उसे बातें करते, भाषण देते, वाद-विवाद करते सुना है, मैंने उसकी आंखों में उस ज्वाला की लपक देखी है जो पुराने रीति रिवाज़ एक ही दृष्टि से भस्म कर देना चाहती है। [सुहास के हाथ अपने हाथों में ले उसकी ओर देखते हुए खड़े होकर] मैं तुम्हें नहीं बता सकती कि मैं उसे कितना प्यार करती हूँ...

सुहास : [हाथ छुड़ाकर और लम्बी सांस भरकर] तो कब तै हुई तुम्हारी शादी ?

रमा : शादी !

[पास ही खिड़की में जा खड़ी होती है ।]

सुहास : [उसके पीछे पीछे जाते हुए] हरीश बाबू से तुमने शादी का फैसला नहीं किया ?

रमा : फैसला ही समझो। हां उसने बाकायदा प्रोपोज़ नहीं किया है। इशारों इशारों में तो वह कई बार कह चुका है। इसी विचार से मैं उसे यहां ले भी आई।

सुहास : सहेलियों को ईर्ष्या और डाह का शिकार बनाने ?

रमा : [मुकराकर] नहीं, निशा ने अपने साथी को चुन लिया था। सोचा था कि शादी करेंगे तो लाहौर ही में...लेकिन यह रजनी, रति और उनकी सहेलियाँ आराम से दो घड़ी बैठने भी दें ! उन्हें... 'हरीश भाई चलिए सिनेमा देखने चलें,' 'शशिधर भाई कार्नवाल लगा हुआ है,' 'हरीश भाई...शशिधर भाई...' मानों हरीश और शशिधर न हुए, खिलौने हो गए इनके !

सुहास : खिलौने तो अब वे तुम दोनों के बनेंगे !

रमा : [अमान भरी नज़रों से बाहर खिड़की में देखती है ।] नहीं सुही, मैं खिलौने नहीं बनाना चाहती। खिलौनों से बहुत खेल चुकी। मैं तो अब स्वयं एक खिलौना बनना चाहती हूँ—चाहती हूँ [अंगड़ाई लेती है ।] कोई खेलाए, घुमाए, इधर से उधर पलट दे, घुमा दे, फिरा दे, [अचानक सुहास की ओर मुड़कर] सच ! [नन्हीं नन्हीं घंटियाँ फिर बज उठती हैं ।]

सुहास : तुमने हमसे मिलाया ही नहीं हरीशजी को। इतनी इच्छा हो रही है उनसे मिलने की !

रमा : रजनी और रति छोड़ें भी उन्हें !

सुहास : कोई फोटो नहीं है उनका ?

रमा : हां, फोटो है उस कमरे में। इस कमरे में तो निशा ठहरी हुई है। मैं तो यों आ गई यहां बाल सवॉरने। आओ, चलो उधर दिखा दूं।

[दोनों चली जाती हैं। कुछ क्षण बाद निशा कान्ति के साथ बाँते करती हुई प्रवेश करती है ।]

कान्ति : [कुर्सी को घसीटकर उसके पास बैठते हुए] पर तुम रोकती नहीं उनको ?

निशा : [उठकर कमरे में घुसते हुए] मैंने तो कह दिया था रमा से कि तुम्हारी बहन घुमाए फिरती है शशिधर को। वे बेचारे थके हुए हैं, बीमार हैं,

तूफान से पहले

किन्तु रमा तो क्या, रति अब मौसी के हाथ से भी निकल चुकी है। वे बेचारे हमारे कारण इच्छा न होते हुए भी घूमते फिरते हैं इन कम्बख्तों के साथ।

कान्ति : पर रजनी भी तो...

निशा : मुझे दोनों बिस की गांठ लगती हैं, आंखों का पानी ही मर गया है बेशर्मों का। छोटे बड़े का भी कुछ लिहाज़ नहीं। मुझे तो रमा का खयाल है, नहीं तो मैं पल भर न ठहरूँ यहाँ। दस दिन नहीं हुए कि नाकों दम कर दिया है कम्बख्तों ने। और फिर मौसी...

कान्ति : मौसी तो...

निशा : [उसकी बात काटते हुए] सदा यही कहती हैं, ' इसी ने बिगाड़ दिया रमा को । ' [व्यंग से हँसती है ।] जैसे रमा तो...

कान्ति : [शरारत से हँसती है ।] ' रोटी ' को ' चोची ' कहती है । [फिर बात का विषय बदलकर] तो तुम आ गई फिर-फिरा कर अपने थान पर । क्यों ?

[खुलकर हँसती है ।]

निशा : नहीं, कुछ दिनों के लिए आई हूँ। इच्छा थी कि विवाह कम से कम लाहौर ही में हो। शशिधर बाबू का तो विचार है कि शादी बिल्कुल सीधी-सादी होनी चाहिए। इतनी टीमटाम की ज़रूरत नहीं। [हँसती है ।] क्या कहूँ बेहद सीधे-सादे, भोले-भाले आदमी हैं; लेकिन मैं नहीं मानी। मुझे तड़क-भड़क पसन्द है। और कुछ न सही, एक शानदार पार्टी तो हो!

कान्ति : [हँसकर] सहेलियां तो जलें !

निशा : नहीं, यह बात नहीं, चार सगे-सम्बन्धी तो होने ही चाहिएँ। [दरवाज़े में जाकर नौकर को आवाज़ देती है ।] हीरे...ओ...हीरे !

हीरा : [दूसरे कमरे से] जी बीबी जी, [भागता आता है ।] जी !

बहनें

निशा : चाय बनाकर जल्दी ला !

हीरा : जी अभी बनाकर लाता हूँ !

[जाने लगता है ।]

निशा : और रमा बहन को इधर भेज देना ।

हीरा : जी बेहतर !

[भाग जाता है ।]

कान्ति : क्या शशिधर बाबू के अपने कोई सगे-सम्बन्धी नहीं ?

निशा : उनके माता पिता नहीं । दूसरे सगे सम्बन्धी हैं, पर उनसे उनकी पटती नहीं । ज़मीन है, जायदाद है, नौकर-चाकर हैं, पर इतना सीधा स्वभाव पाया है कि घर में आराम से बैठने के बदले नौकरी करते हैं । कहते हैं...बेकार बैठे क्या करूँ ? और सगे-सम्बन्धी चाहते हैं— पिछे-खाएँ, मौज उड़ाएँ कि उनके भी गहरे हों !

कान्ति : लेकिन यह तुम्हें सूझी क्या इलाहाबाद में...?

निशा : रमा और मैं दोनों ने प्रतिज्ञा की थी कि हम दोनों अपनी पसन्द का साथी चुनेंगी, चाहे फिर हमें इसके लिए लाहौर ही क्यों न छोड़ना पड़े ।

कान्ति : प्राचीन काल की राजकुमारियों की तरह...

निशा : एक विचित्र रूमानी (romantic) खयाल था और जब हमने सहेलियों में बैठकर बड़ हाँकी थी तो यह सोचा भी न था कि अर्द्ध-चेतन में कभी यह धुँधला-सा खयाल लेकर हमें लाहौर छोड़ना पड़ेगा ।

कान्ति : पर लाहौर से तुम बुरी तरह ऊब गई थीं । मेरे विवाह की बात याद है न—तुम कितनी उदास थीं !

निशा : रमा की दिन प्रतिदिन बढ़ती हुई [हँसती है ।] ' ख्याति ' की चपेट में मैं भी आ गई और फिर जिन घरों में लड़कियों की इतनी भरमार हो, वहाँ बड़ी लड़कियों की आफत—खरबूजे को देखकर खरबूजा रंग

तूफान से पहले

पकड़ता है—रति के अतिरिक्त चार बहनें तो रमा के हैं और रजनी क छोड़कर पाँच मेरे । और फिर यह रति और रजनी भी कड़वी बेल की तरह बंद रही हैं । हमारे साथ उनका भविष्य भी बिगड़ता, सो हमने छोड़ दिया लाहौर को ।

[आकर उसके बराबर कुर्सी पर बैठ जाती है ।]

कान्ति : तुम दोनों जाकर एक ही दफ्तर में नौकर हुईं ?

निशा : नहीं रमा तो सदा एक बुद्धि-जीवी की खोज में रही है । इसलिए इला-हाबाद पहुँचकर उसने यूनीवर्सिटी में लेक्चररशिप स्वीकार कर ली; किन्तु मैं तो ऐसा साथी चाहती थी जिसे मेरी ज़रूरत हो—मैं तुम्हें कैसे समझाऊँ—जैसे बच्चे को माँ की !

कान्ति : क्या कहती हो ? [हँसते हुए उनके पीछे जाती है ।] जैसे बच्चे को माँ की ?

निशा : हाँ कान्ति ! जैसे बच्चे को माँ की ! एक दिन शशिधर बाबू ने कहा भी...तुम्हें देखकर नशा मुझे ऐसे लगता है जैसे मेरी माँ और बहन दोनों तुम में सिमट कर आ गई हैं !

कान्ति : [हँसकर] और पत्नी ?

निशा : स्त्री विवाह के पहले माँ और बहन तो बन सकती है, पर पत्नी नहीं, विशेषकर इस देश में !

कान्ति : वह अब बन जाएगी ! कहो कब होने जा रही है शादी ?

निशा : मैंने दफ्तर से केवल महीने भर की छुट्टी ली है । इसी बीच में शादी करके वापस जाना चाहती हूँ ।

कान्ति : पर तुम किस दफ्तर में नौकर हुई, यह तुमने कुछ नहीं बताया ।

निशा : रेडक्रास में ! बात यह थी कि जैसा काम और साथी मैं चाहती थी वह मुझे किसी ऐसी ही संस्था में मिल सकता था—ऐसा साथी जिसे अपने

बहनें

आप से प्यार न हो, बल्कि जो वास्तव में प्यार चाहता हो। दिन के काम से थककर जब घर आए तो घर का आराम चाहे। जो थोड़ा सा स्नेह पाकर भी संतुष्ट हो जाए। एहसान का बोझ लादता हुआ दूसरे के प्यार को न स्वीकार करे, बल्कि उसे दूसरे का उपकार माने, और शशिधर बाबू को मैंने ऐसा ही पाया है।

कान्ति : तो ऐसे हैं तुम्हारे शशिधर बाबू...

[हँसती है ।]

निशा : [हँसती है ।] बच्चों ही की भांति बेपरवाह हैं। मैं जब पहली बार उनके यहां गई थी तो दया की एक विचित्र भावना मेरे मन में उमड़ आई थी—फर्नीचर पर मिट्टी की तह जमी हुई थी; बैठक की खूंटियों पर बिस्तर की पुरानी चादरें लटकी हुई थीं; हाथ-मुंह धोने का एक नया तौलिया ढूँढ़ने में उन्हें काफी देर लग गई—सारा दिन लगाकर मैंने हर चीज़ करीने से रखी; पुराने कपड़े ढूँढ़कर इकट्ठे किए; सिरहाने का गिलाफ़, बिस्तरों की चादरें, मेज़पोश, टीकोज़ी-कवर, सब कुछ बदला—शशिधर उन बच्चों की तरह हैं, जो दिन भर पढ़-खेल-थक कर जब सांझ पढ़े घर आते हैं तो बिना खाए-पीए सो जाते हैं और मां को उन्हें जगा जगा कर खाना खिलाना पड़ता है।

कान्ति : भई हमारा तो उनसे परिचय करा दिया होता! हम भी देख लेते तुम्हारे इस बच्चे को! अब तो हम बँध गए हैं खूँटे से, हमसे तो तुम्हें किसी तरह का भय न होना चाहिए! [हँसती है और उठ खड़ी होती है ।] अच्छा अब मैं चलती हूँ।

निशा : वह हीरा अभी तक चाय बनाकर ही नहीं लाया! [दरवाज़े में जाकर आवाज़ देती है ।] हीरे, ले भी आ चाय!

हीरा : [बाहर से] जी, अभी लाया!

निशा : अभी लाया, अभी लाया, जानें दूसरे जन्म में लायेगा! [आते आते] अब आई हो तुम, एक कप पी कर ही जाना।

तूफ़ान से पहले

कान्ति : मुझे चाय-वाय की कुछ ऐसी इच्छा नहीं, मुझे क्लब जाना है ।

निशा : अभी ले आएगा । [फिर नौकर को अवाज़ देती है] हीरे...ले आ जल्दी चाय !

हीरा : जी आया ।

कान्ति : तुम्हें इतने दिन आये हो गए, लेकिन तुम क्लब में नहीं लाई शशिधर-जी को ?

निशा : क्लब में ! [हँसती है ।] मैं तो स्वयं तरस गई हूँ उसने दो बातें करने को । यह रजनी छोड़े भी उनका पीछा... 'शशिधर भाई फ़िल्म आया है, एक दम फ़र्स्ट क्लास !...शशिधर भाई चलिए नुमायश देखने चलें...शशिधर भाई...' मालूम होता है, होती है कोई शशिधर भाई की ! रात को आते हैं दस-दस, बारह-बारह बजे और सबरे बेचारे सोकर नहीं उठते कि यह चुड़ैलें सिर पर आकर सवार हो जाती हैं । वे ठहरे सीधे-सादे आदमी, अब क्या कहें उनसे ? रमा अपनी शादी का फैसला करले तो मैं भी इस झंझट से छुटकारा पा जाऊँ ।

कान्ति : पर रमा का और तुम्हारा विवाह क्या एक ही दिन होना तय हुआ है ?

निशा : सनक थी कि इकट्ठे शादी करेंगे और इकट्ठे एक शानदार पार्टी देंगे ।

कान्ति : और इकट्ठे कहीं हनीमून मनाएंगे ! [हँसती है ।] कोई फोटो ही दिखा दो उनका । न जानें अब वे लोग कब आएंगे, मुझे तो जाना है ।

निशा : हाँ, मैं फोटो दिखाती हूँ ।

[उठती है और ट्रंक से अलबम निकालती है । कान्ति उसके पास जाती है । दोनों बड़ी तन्मयता से चित्र देखती हैं ।]

कान्ति : आदमी तो सुन्दर हैं तुम्हारे शशिधर ! चुनाव की दाद देती हूँ ! भरा पड़ा है अलबम उनकी तस्वीरों से, कोई इकट्ठा चित्र नहीं तुम दोनों का ?

निशा : है, पर वह अलग पड़ा है ।

बहनें

कान्ति : निकालो तो ।

[निशा उसी ट्रंक से चित्र निकालती है और कान्ति को देती है ।]

—वाह, कितना सुन्दर है ! इसे तुम मैटलपीस पर रखो, ट्रंक में क्या बन्द करके रख छोड़ा है इसको ?

[रमा और सुहास आती हैं । सुहास के हाथों में भी एक चित्र है ।]

सुहास : मैं कहती हूँ, तुम्हारी सब सहेलियाँ ईर्ष्या से जल उठेंगी । क्या उम्र होगी हरीश की ?

रमा : मेरी ही उम्र के होंगे ।

सुहास : शायद तुमसे एक-दो साल कम ! [शरारत से मुस्कराती है ।] लेकिन भई कुछ भी हो, चुनाव तुमने खूब किया है । अब इस तस्वीर को मैटलपीस पर सजा दो !

कान्ति : यही मैं निशा से कह रही हूँ ।

सुहास : [चौंकर] ओह हो ! श्रीमती कान्ति सलूजा भी हैं यहाँ ! कहे डार्लिंग क्या हालचाल हैं ? तुम तो मिलने जुलने से भी गई ! मैं समझती हूँ, अगर निशा न आती तो तुम्हारे दर्शन भी न होते ।

कान्ति : तुम कौन दिखाई देती हो ? रमा आ गई तो तुम्हें भी देख लिया । अनारकली, मालरोड, लॉरेस क्लब कहीं भी तो तुम दिखाई नहीं देती ।

निशा : इनके श्रीमान इन्हें शीशे की अल्मारी में बन्द करके देखते रहना पसन्द करते हैं !

[सब हंसती हैं, चाय आ जाती है और नौकर मेज़ पर चाय रखता है ।]

सुहास : क्या किया जाए ? जीवन बिताने के लिये यह समझौते करने ही पड़ते हैं । मैंने तो क्लब का नाम आज तुमसे सुना है । सब कुछ मानों सपना होकर रह गया—दादी जी किसी को घर से निकलने ही नहीं देतीं और हमारे घर में दादी जी का राज है ।

तूफान से पहले

निशा : पर धन-सम्पत्ति की तो कभी नहीं दादी जी के राज में !

सुहास : धन-सम्पत्ति बैंकों या हवेलियों में रहती है । बैंकों में एकत्र सम्पत्ति यदि किसी को लाभ पहुँचा सकती है तो मुझे भी पहुँचा रही है । धन-सम्पत्ति ! [बिचैली हंसी से] हम स्त्रियाँ भी तो इसी धन-सम्पत्ति का भाग हैं । धन सम्पत्ति बकों में बन्द करके रखा जाता है, हमें हवेलियों में ! [कान्ति से] तुम तो प्रसन्न हो ? तुम्हारे सैर, तमाशे, खेल तो उसी तरह हैं ?

कान्ति : हम तो किसी के दबैल नहीं बसते ! उन्हें कुछ टेनिस-वेनिस का इतना शौक नहीं, क्लब-क्लब को भी वे कुछ ज़्यादा पसन्द नहीं करते, पर मैंने तो साफ़ कह दिया सलूजा साहब से कि यह सब कुछ मुझे घुट्टी के साथ मिला है, इन सब से एकदम किनारा कर लेना मेरे बस की बात नहीं । कई बार खीझते हैं, पर मैं तो रोज़ सैर को जाती हूँ ।

[नौकर चला जाता है । तस्वीरें मैटलपीस पर रखकर सब तिपाई के पास आ खड़ी होती हैं ।]

निशा : [चाय बनाते हुए] पर इस तरह घरेलू सुख...

कान्ति : एक मरीचिका है—जितना उसके पीछे भागो वह दूर होती जाती है । मैंने उसके पीछे भागना छोड़ दिया है । जिसे लोग घरेलू या वैवाहिक सुख कहते हैं, वह शायद मेरे भाग्य में नहीं...पर सुख मुझे प्राप्त है !

निशा : [प्याला उठाते हुए] अगर विवाह का सुख ही न हो, तो विवाह से लाभ ?

कान्ति : यह बड़े समाज के कोप से बचने के लिए है !

निशा : त्याग से दुखमय घरेलू जीवन भी सुखमय और...

कान्ति : त्याग ! [ठहाका मारकर हँसती है—न्यंग और कड़ुता से भरा ठहाका] त्याग का मूल्य सुही से पूछो—इसने कितना त्याग नहीं किया, पर हुआ प्राप्त इसे घरेलू सुख !

बहनें

सुहास : सुख ! [विषाद से हँसती है ।] शायद तुम सच कहती हो, मरी-चिका है !

निशा : पर इस प्रकार आत्मिक शान्ति कहां मिलती है ?

काम्ति : उस शान्ति से लाभ, जिसके गर्भ में बेचैनी की आंधी निरन्तर चल रही हो ? सुही की आकृति की ओर देखो, मेरी बात का समर्थन करेगी ।

रमा : [जो इस बीच में बराबर बहस सुनती और कुर्सी पर बैठी चाय की चुसकियां ले रही है ।] पर सुही के मामले में तो आरंभ ही ग़लत हुआ । घरेलू सुख के लिए यह आवश्यक है कि पहले अपनी रुचि का साथी ढूँढ़ा जाए—ऐसा, जिससे आपको हमदर्दी हो, प्यार हो, और जिसे आप से हमदर्दी और प्यार हो । फिर त्याग में भी सुख मिलता है । तब यदि कोई त्याग भी किया जाता है तो अपने ही लिए किया जाता है, या फिर उसके लिए, जिससे हमको प्यार होता है ।

निशा : जिसके लिए त्याग करने में हमें स्वयं सुख मिलता है । रमा ठीक कहती है, सुही के मामले में तो आरम्भ ही ग़लत हुआ ।

रमा : अरे भाई खड़े खड़े क्या बातें कर रही हो ? निशा, ज़रा पान और चाय मँगाना ।

सुहास : नहीं रमा, तुम्हें देखने का अरमान था, सो देख लिया । चाय के फेर में न पड़ो, यदि चाहती हो कि मुझे जाकर बीस बीस बातें न सुननी पड़ें तो मुझे छुट्टी दो । तुम्हारे हरीश बाबू को देखने की लालसा थी, सो जिस दिन तुम विवाह का निमन्त्रण भेजोगी, आकर देख जाऊंगी । अब मुझे जाने दो, दादीजी का स्वभाव तुम जानती हो—अच्छा भई निशा, परमात्मा करे...

रमा : [उठकर] चलो तुम्हें नीचे तक छोड़ आऊँ । तुम से तो जी-भरकर बातें ही नहीं हुई ।

तूफ़ान से पहले

सुहास : अरे भाई, यह शिष्टाचार छोड़ो रमा ! बैठो बैठो, मैं फिर अवसर पाकर आने की कोशिश करूंगी । अच्छा नमस्कार ! [दोनों हाथ जोड़कर माथे से लगाते हुए मुड़ती है । कान्ति भी निशा की ओर हाथ बढ़ाती है ।]

निशा : तुम तो बैठो कान्ति, अभी दो-चार मिनट !

कान्ति : न भाई, मैं तो अब जाऊंगी । पापा ने आज रमेश को इनवाइट [invite] किया है टेनिस पर ! निराशा होगी, यदि मैं न गई । फिर आऊंगी ।

[जल्दी जल्दी दोनों से हाथ मिलाती है ।]

[जाते हुए दरवाज़े से] चियरिओ !

निशा और रमा : चियरिओ !

निशा : [सुहास और कान्ति के चले जाने के बाद] परमात्मा को लाख लाख धन्यवाद है कि हमने इस मामले में आरम्भिक गलतियाँ नहीं कीं और चाहे देर से सही, पर ठीक चुनाव किया ।

रमा : मैं हरीश के लिए बड़े से बड़ा त्याग कर सकती हूँ ।

निशा : और मैं शशिधर के लिए ! इस विवाह के संकट से छुटकारा पाएं तो वापस इलाहाबाद चलें ।

रमा : जानें कान्ति को किस तरह इन बातों में आनन्द मिलता है ! मैं तो थक गई यह खेल खेल कर ! वस इलाहाबाद चलकर अपनी छोटी-सी गृहस्थी बसाएं ।

निशा : [कल्पना ही कल्पना में जैसे उस गृहस्थी में पहुँच गई हो] न अनबन हो, न गुस्सा हो, न झिड़की हो, न गाली हो—सुख और शान्ति से जीवन बीतता चला जाए...प्रयाग की लहरों पर मंद मंद बहनेवाली किसी नौका की भाँति—बिना छलके, बिना डोले . चुप चुप हिलोरेँ लेते हुए ।

बहनें

रमा : दोनों इकट्ठे एक बैंगलें में रहेंगी, मौसियाँ जो न कर पाई, वह हम करेंगी; ड्राईगर्लूम कामन रखेंगी और मैटलपीस पर [अँगीठी के पास जाकर एलबम से चित्र निकालते हुये] पहले शशिधर की तस्वीर होगी, फिर तुम्हारी, फिर हरीश की होगी, और फिर मेरी...[सजाती है ।] इस तरह !

[संतोष से तस्वीरों की ओर देखती है । दरवाजे से नन्ही आभा झाँकती है, जो कुछ देर से वहीं खड़ी उनकी बातें सुन रही है ।]

आभा : दीदी, अब हरीश भाई के साथ तो रति बहन की तस्वीर लगा दो ।

रमा : [मुड़कर क्रोध से] आभा !

आभा : हरीश भाई और रति बहन का विवाह हो गया ।

रमा : [उसके पास आकर उसके कंधे झकझोर कर] क्या ?

आभा : मुझे अभी अभी रति बहन की सहेली-दूसी ने बताया है, वे तो पार्टी की तैयारियाँ कर रही हैं । कोर्ट में जाकर सिविल मैरिज की है उन दोनों ने ।

रमा : [लड़खड़ाते शराबी की भाँति वापस जाते हुए] निशा !

निशा : [जैसे अपने आप से] पर वे लोग तो शालामार देखने गए थे [एक अज्ञात से भय से] शशिधर कहाँ हैं ?

आभा : पहले उन्हीं का विवाह हुआ ।

निशा : विवाह !

आभा : रजनी बहन के साथ ।

निशा : [आंखी के बेग में पंख फैलाए विचर पंछी की भाँति रमा की ओर आते हुए] रमा !

[सहसा दोनों एक दूसरे को बांहों में भर लेती हैं ।]

[पर्दा गिरता है ।]

पापी

पात्र :

शान्तिलाल

छाया

रेखा

उषा

माँ

समय :

सायंकाल साढ़े-सात बजे । घरों में लैम्प रोशन हो चुके हैं ।

स्थान :

शान्तिलाल के घर का कमरा, जो ड्राइंग-रूम का भी काम देता है ।

[तीन दरवाज़े कमरे में खुलते हैं । नम्बर (१) छाया के कमरे को जाता है, जो ड्राइंग-रूम से तनिक दूर घर के पिछवाड़े की ओर है । नम्बर (२) आंगन में खुलता है, जिधर से रसोई-घर और ज्योढ़ी को जाने के रास्ते हैं । नम्बर (३) एक कमरे में खुलता है, जो एक प्रकार का आराम का कमरा है ।

ड्राइंग-रूम में एक मेज़ है, जिसके आसपास कुर्सियाँ पड़ी हैं । सामने अँगोठी की कारनिस पर फूलदान रखे हैं । मेज़ पर पुस्तकें चुनी हुई हैं । सामने के दरवाज़ों पर काले रंग के पर्दे हैं, जिन पर श्वेत मोर बने हैं । कमरे के दरवाज़े पर हल्के लाल रंग का पर्दा है । ड्राइंग-रूम को बिजली के तीन बल्ब रोशन कर रहे हैं ।

पर्दा उठता है ।

छाया दाईं ओर का पर्दा उठाकर अन्दर झाँकती है । एक पाँव अन्दर रखती है और कुछ क्षण चौखट में ही बैठी रहती है । फिर दूसरा पाँव अन्दर रखती है और किवाड़ का सहारा लेकर खड़ी होती है, पतली-दुबली यक्ष्मा से पीड़ित । शरीर सूखकर कंकालमात्र रह गया है । अघर शुष्क हैं, गाल पिचक गये हैं, जबड़ों की हड्डियाँ उभरी हुई हैं । रंग काला पड़ गया है । शलवार और कमीज़ पहने हैं; परन्तु दोनों कपड़े उसके शरीर पर ढीले दिखाई देते हैं ।

धीरे-धीरे उधर-उधर देखती हुई बढ़ती है । सर में चक्कर आता है । एक हाथ से सर को थामकर दूसरे से मेज़ का सहारा लेती है और कुर्सी में धँस जाती है । सर मेज़ पर रख लेती है । दो-एक बार मुँह पर रुमाल रखकर खाँसती है, फिर धीरे धीरे सिर उठाती है । मद्धिम् आवाज़ में जैसे अपने-आप बातें कर रही है ।]

तूफ़ान से पहले

छाया : जब मर ही जाना है, सब-कुछ छोड़कर मर जाना है तो फिर यह ईर्ष्या क्यों, यह डाह क्यों ? आज न सही, कल; कल न सही, परसों; शीघ्र ही जीवन का टिमटिमाता हुआ दीया बुझ जाने को है । फिर भविष्य के उस अंधकार में टटोलने से लाभ ? कोई उसे प्रदीप्त करे । वह ज्योतिर्मयी मशाल हो, या चकाचौंध पैदा करनेवाली बिजली, कोई हो, दीये को क्या ? बुझे हुए दीप को क्या ?

[दीर्घ निःश्वास छोड़ती है । ज़ोर की खाँसी आती है; मुँह पर रूमाल रखकर सर मेज़ से लगा लेती है । कुछ देर बाद फिर धीरे धीरे सिर उठाती है । मुख और उतर गया है । उसी भाँति अपने-आप]

—नहीं; देखूंगी । अपने हाथों बनाये हुए कल्पना के भव्य प्रासादों को अपने सामने जलते हुए देखूंगी ! उन्हें जलने से बचा तो न सकूंगी; परन्तु चुप भी कैसे बैठी रह सकूंगी, किसी का घर धड़ाधड़ जल रहा हो और वह मौन, चुप, मजे-से बैठा रहे, कैसे हो सकता है ? वह उसे जलने से न बचा सकता हो, वह कुछ भी न कर सकता हो । वह देख तो सकता है—अपनी हसरतों, अपने अरमानों, अपनी चिर-संचित आकांक्षाओं को बर्बाद होते देख तो सकता है । वह न देखेगा तो पागल हो जायगा, न देखेगा तो मर जायगा ।

[खाँसी आती है, रूमाल मुँह पर रखती है ।]

—उसी कमरे में होंगे वे, मैंने उन्हें कुछ देर पहले इधर आते देखा था । इस कमरे में तो नहीं, ज़रूर उसी में होंगे ।

[उठती है । खाँसी आती है । एक पग चलती है, फिर दूसरी कुर्सी पर बैठ जाती है । फिर धीरे धीरे चलकर कमरे के दरवाज़े तक जाती है । पर्दा उठाकर देखती है । दरवाज़ा ज़रा-सा खुला है । झाँकती है । जल्दी से पर्दा छोड़ देती है, मुड़ती है, चेहरा और भी काला पड़ जाता है, आँखों के गढ़े और भी गहरे हो जाते हैं ।]

पापी

— [तनिक भावेग से] रेखा, रेखा, बहन होकर, मौँ-जाई होकर मेरी चिता पर यह रँगेलियाँ ! हाथ, तुम्हें लज्जा नहीं आती, तुम्हें लज्जा नहीं आती रेखा, और तुम—तुम्हें मैं क्या कहूँ ?

[तेज़ी से जाने लगती है । सर में चक्कर आता है । कुर्सी का सहारा लेते-लेते गिर पड़ती है और अचेत हो जाती है । कमरे का दरवाज़ा खुलता है । पर्दे को उठाकर तेज़ी से शान्तिलाल प्रवेश करता है, केवल एक कमीज़ और पतलून पहने । कमीज़ का गिरेबान खुला है ।

रसोई की ओर से मौँ भागी आती है । हाथ में फुँकनी और मुँह पर कालिख के धब्बे हैं । घबराई हुई है, साँस फूल रही है । फुँकनी फेंकती है, छाया पर झुकती है । शान्तिलाल घुटनों के बल बैठा है ।]

शान्तिलाल : [आवाज़ धीमी और कंठ में फँसी हुई] छाया, छाया !

मौँ : इतनी दूर चलकर यह कैसे आ गई ? अपने कमरे से यहाँ तक ! इसे तो चारपाई तक से हिलने की मनाही है ।

शान्तिलाल : [छाया को अपनी बलिष्ठ भुजाओं में उठाता हुआ] मुझे क्या मालूम ?

[छाया को उठाकर उसके कमरे की ओर ले जाता है । मौँ उसके पीछे-पीछे जाती है । कमरे से धीरे-धीरे रेखा निकलती है । मँझोला कद, कोमल अंग, उन्नाबी रंग की साड़ी में चलती-फिरती ज्वाला दिखाई देती है । मुख पर चिन्ता है । पग-पग चलती मध्य में आ जाती है ।]

रेखा : [धीरे-धीरे, आप-आप] क्या हो रहा है, क्या होने को है ? मैं तो बीमार बहन को देखने आई थी, मैं तो उसका दुख बँटाने आई थी । क्या मैं उसका दुख दूर कर रही हूँ ? [व्यंग से मुस्कराती है ।] वाह ! क्या खूब दर्द बँटा रही हूँ ! मैं उसे मृत्यु के समीप लिये जा रही हूँ ; उसके दुख की चिनगारी को ज्वाला बना रही हूँ ।

तूफ़ान से पहले

[कुर्सी में घँस जाती है ।]

—रेखा, रेखा, तुझे क्या हो गया है ? तुझे क्या हो गया है ? तुझे अपने आप पर तनिक भी काबू नहीं रहा ? तू बही जा रही है, डूबी जा रही है और अपने साथ उसे भी बहाये जा रही है, उसे भी डुबाये जा रही है, जिसे तू बचाना चाहती है, जिसे तू बचाने को आई है । [उठती है । कमरे में बेचैनी से घूमती है ।] नहीं, तुझे अपने-आप पर काबू रखना होगा । तुझे अपने-आप को हत्यारिन होने से बचाना होगा । यह दिल ! इस पागल दिल के उद्गारों को रोक रखना होगा; यह आँखें ! इन प्यासी आँखों की तृष्णा को दबा देना होगा; यह कान ! इन रसिया कानों की लालसा को बाँध रखना होगा । तू देखकर भी न देखेगी, सुनकर भी न सुनेगी, अनुभूति रखने पर भी कुछ महसूस न करेगी ।

[किवाड़ खुलने की आवाज़ आती है । रेखा तेज़ी से कमरे में चली जाती है । छाया के कमरे की ओर से शान्तिलाल दाख़िल होता है । झुकती तनी हुई है, फ़र्श पर गिरी हुई एक पुस्तक को पोंव की ठोकर मारता हुआ अँगीठी के नीचे गद्देदार कुर्सी पर बैठ जाता है । कुहनियाँ टेक लेता है और हथेलियों पर तोड़ी रखकर सोचता है । उसी दरवाज़े से माँ प्रवेश करती है ।]

माँ : तुम इधर आ गये, उसके पास जाकर बैठो ।

शान्तिलाल : [चुप]

माँ : जाओ, उसके पास जाकर बैठो; वह बीमार है, मरने को है ।

शान्तिलाल : [चुप]

मा : मैं क्या चीख़ रही हूँ, क्या बक रही हूँ ?

शान्तिलाल : [उसी तरह बैठे-बैठे] मैं यह सब कुछ नहीं सह सकता ।

माँ : क्या नहीं सह सकते ?

पापी

शान्तिलाल : यह दर-रोज़ का दुख, क्लेश, व्यथा, व्यंग-उपहास । मैं थक गया हूँ—

माँ : और हममें क्या नित-नई शक्ति आती है ? हम नहीं थक गये, हम नहीं ऊब गये ? किन्तु यह कर्तव्य है, धर्म है । कल मैं बीमार पड़ जाऊँ, तो क्या मैं न चाहूँगी, कोई मेरी सेवा करे, कोई मेरे पास बैठे, मेरी सेवा-शुश्रूषा करे ? जाओ, वह रो रही है, उसे धीरज बँधाओ ।

शान्तिलाल : मैं कहाँ तक सान्त्वना दूँ, कहाँ तक धीरज बँधाऊँ ?

माँ : जैसे तुम सदा धीरज बँधाते हो, सान्त्वना देते हो !

शान्तिलाल : [बेज़ारी से] नहीं, मैं कुछ नहीं करता; मैंने कुछ नहीं किया । बस, फिर वही व्यंग के तीर, वही कटु अनकहनी बातें ! [तनिक आवेग से] क्या मैंने महीनों उसकी सेवा नहीं की, महीनों अपने स्वास्थ्य की चिन्ता न करके उसकी सेवा-शुश्रूषा नहीं करता रहा, दिनके एक-एक बजे तक बिना खाये-पिये डाक्टर के पीछे मारा-मारा नहीं फिरा, सैनेटोरियम में मैंने उसे नहीं पहुँचाया, पहाड़ पर मैं उसे नहीं ले गया, दिन का चैन और रातों की नींद मैंने हराम नहीं की ? [धीमे स्वर में] नहीं, मैंने कुछ नहीं किया, मैंने कुछ नहीं किया !

माँ : नहीं, तुमने बहुत कुछ किया है, और उस बहुत-कुछ का तो शायद तुम बदला ले रहे हो—और उसकी आँखों के सामने ही - हाय ! शान्तिलाल-बेटा, तुमने उसकी दशा कैसी बना दी है ? दो वर्षों में वह इतनी खराब नहीं हुई, जितनी इन दो दिनों में । वह होश में है, किन्तु अच्छा था, यदि वह बेहोश होती । मैं कहती हूँ, तुम यह व्यवहार छोड़ दो, तुम्हें वह अच्छी नहीं लगती तो उसे विष दे दो, उसका गला घोट दो ।

शान्तिलाल : [जोश से खड़ा हो जाता है ।] मैंने उसकी यह दशा की है, व्यवहार मेरा बुरा है । बच्चा पैदा होने के बाद दिन-रात मैंने उसे काम में लगाये रखा, उसके सिर में पीड़ा रहने लगी, उसे मैंने नखरा बताया । उसे ज्वर हो आया, मैंने तानों की खुराकें दीं । टाइफ़ाइड के बाद मैंने

तूफान से पहले

उसे आराम न लेने दिया। आप को अपने दोष दूसरों के सिर मढ़ने खूब आते हैं। यदि उसे मेरे व्यवहार के कारण ही बीमार होना होता, तो वह अब तक मर चुकी होती। तीन वर्ष जो मेरे पास रही, तब तो उसका सिर तक बं दुखा; यहाँ आकर ही उसे बीमारी क्यों चिमट गई, उसकी बीमारी का उत्तरदायी मैं हूँ, या आप?

माँ : [शान्ति के साथ] बेटा, बीमारी न तुम्हारे बस की है, न मेरे। यह तो न लगाये लगती है, और न हटाये हटती है। जिसके भाग्य में जितना दुःख लिखा है, उसे भोगना पड़ेगा—चाहे वह धनी हो, या निर्धन; सम्पन्न हो, या विपन्न।

शान्तिलाल : नहीं, मैं यह नहीं मानता। ये सब रोग हमारे लगाये ही लगते हैं। नव विवाहित युवक यक्ष्मा से उतने क्यों नहीं मरते, जितनी नव-विवाहित युवतियाँ ? यह सासों की क्षुद्रता और निर्दयता है, जिसके कारण आज इतनी लड़कियाँ इस रोग के हाथों मृत्यु का प्रास बन रही हैं।

माँ : सासों निर्दयी होती हैं ?

शान्तिलाल : नहीं तो क्या, दया का अवतार होती हैं ! मैंने तुम्हें आज तक मां के रूप में देखा था, मां ! यदि मुझे ज्ञात होता, इस दयामयी मां के कलेवर में निर्दयी सास भी छुपी हुई है तो मैं किसी अस्पताल में प्रसव का प्रबन्ध कर लेता। उसे बच्चा हुआ, उसकी देख-भाल न की गई; उसे टाइफ़ॉइड हुआ, ठीक उपचार न किया गया। मैं आराम-आराम चीज़ता रहा, उसे आराम न दिया गया। अब तुम्हीं बताओ, जिस लड़की ने माँ-बाप के घर बहुत काम न किया हो, पति के घर बहुत काम न किया हो, वह बच्चेवाली हो, उसे पढ़ने का शौक हो, वह काम भी करे, दस-दस कमरों में बुहारी दे, ढेर-के ढेर बर्तन माँजे, समय-कुसमय खाना खाय, फिर वह बीमार न हो, तो क्या हो ?

माँ : टाइफ़ॉइड तो तुम्हारे भाई को भी हुआ था, मरते-मरते बचा था।

शान्तिलाल : वह तुम्हारा लड़का था, बहू न थी। नैं कब कहता हूँ, तुम में मुहब्बत का अभाव है। मैं जानता हूँ, मैं बीमार हो जाऊँ, तो तुम

पापी

आकाश-पाताल एक कर दोगी; पर यदि बहू की तबीयत खराब हो, तो तुम कहोगी कि नखरे करती है, बहाने बनाती है ! मैंने लाख कहा कि मैं काम नहीं चाहता, उसे आराम करने दो; पर तुम लोग तो उसे मारने पर तुले हुए थे। तुम सबने मिल-मिलाकर उसे बीमार कर दिया, अब अभियोग मुझ पर धरा जाता है। विष का घूंट तुम लोगों ने उसे पिलाया, खाली प्याला बरबस मेरे हाथों में टूँसा जा रहा है। [कुर्सी में धँस जाता है।]

माँ : [जोश में खड़ी हो जाती है।] शर्म करो, शर्म करो ! हमें दोषी ठहराते तुम्हें लज्जा नहीं आती। तुम्हें हमारी सेवा, सेवा नहीं मालूम होती। हम सारा-सारा दिन काम करते रहें, सारी-सारी रातें जागते रहें, वह किसी गिनती में ही नहीं ! मैं कहती हूँ, जो हालत तुमने पैदा कर रखी है, उसमें तुम्हारी मां तो क्या, स्वयं धन्वन्तरि भी चलकर आयें, तो उसे निरोग न कर सकें। ज़रा अपने गेरेबाँ में मुँह डालकर देखो। सोचो, बीमार स्त्री सेवा-शुश्रूषा ही चाहती है क्या, सूखी सेवा-शुश्रूषा ही चाहती है क्या ? वह क्या चाहती है, यह तुम अच्छी तरह जानते हो; पर तुम जानते हुए भी अनजान बनते हो। समझने की शक्ति रखते हुए भी समझने का प्रयास नहीं करते !

शान्तिलाल : क्या, समझने का प्रयास नहीं करता ?

माँ : यही कि बीमार नारी क्या चाहती है।

शान्तिलाल : क्या चाहती है ?

माँ : वह चाहती है कि उसका पति उसके पास रहे। उसके सिरहाने बैठे, उसकी सेवा-शुश्रूषा करे और इन सबसे बढ़कर उसे तसल्ली दे। उसे बताये कि वह उसके साथ है। चाहे दुनिया उसका साथ छोड़ दे, रिश्ते-नातेदार उसकी बीमारी से ऊब जायें; पर वह न ऊबेगा, उसके व्यवहार में अन्तर न आयेगा। वह उससे उतना ही प्रेम करेगा, जितना पहले करता था।

तूफान से पहले

शान्तिलाल : क्या मैंने ऐसा नहीं किया, क्या मैंने निरन्तर कई रातें उसके सिरहाने बैठकर नहीं गुज़ार दीं ?

माँ : हाँ, गुज़ार दी हैं, और शायद इसीलिए इसी जन्म में उससे अपने एहसान का बदला भी ले रहे हो और जीते-जी उसके सीने पर सौत...

[कमरे से रेखा निकलती है और तेज़ी से आँगन की ओर जाती है। मुख क्रोध के कारण लाल हो गया है।]

शान्तिलाल : रेखा ! [खड़ा हो जाता है।]

[रेखा नहीं सुनती, नहीं देखती, बढ़ी जाती है।]

शान्तिलाल : रेखा, रेखा !

[रेखा एक बार देखती है और चली जाती है। शान्तिलाल उसके पीछे जाता है।]

मा : उसे देखते जाओ, उसे तसल्ली देते जाओ; उसकी दशा ठीक नहीं, वह न बचेगी।

[शान्तिलाल नहीं सुनता, चला जाता है। माँ निराश होकर बैठ जाती है। दूसरे दरवाज़े से उषा प्रवेश करती है।]

उषा : माँ—भौजी !

माँ : छाया ?

उषा : हाँ !

माँ : क्या है ?

उषा : तुम चलो।

माँ : कहो, कहो, घबराई हुई क्यों हो ?

उषा : माँ, वह अपनी बड़ी-बड़ी आँखों से छत को, दीवारों को, मुझको इस तरह देखती है कि मुझे डर लगता है। उसकी आँखों में आँसू हैं और मैं उसे धीरज नहीं बँधा सकती।

पापी

माँ : (दीर्घ निःश्वास लेकर) अभागी बहू, मरते समय भी तेरी किस्मत में धैन नहीं ! [फिर दीर्घ निःश्वास लेती है । उषा से —] चली ।

[दोनों छाया के कमरे को चली जाती हैं । आँगन से शान्तिलाल रेखा का हाथ पकड़े प्रवेश करता है । आकर कुर्सी पर बैठ जाता है । रेखा खड़ी है और दूसरी ओर मुहँ किये हुवे है ।]

शान्तिलाल : रेखा !

रेखा : [चुप]

शान्तिलाल : [रुद्ध कंठ से] रेखा !

रेखा : [फिर चुप]

शान्तिलाल : [रेखा के हाथ को सटककर] रेखा, रेखा !

रेखा : [उसी भँति खड़े-खड़े] कहो !

शान्तिलाल : क्या कहूँ, कुछ सूझता भी हो ! मस्तिष्क में हलचल मची हुई है, कुछ सोच नहीं पाता, कुछ समझ नहीं पाता । मैं क्या कहूँ ?

रेखा : तो कुछ न कहो, मुझे जाने दो ।

शान्तिलाल : [रुद्ध कंठ से] रेखा, कुछ न कहूँ ?

रेखा : कुछ कहो या मुझे जाने दो । मैं तो पूछती हूँ, कहो, कुछ कहो; बताओ, क्या कहना चाहते हो ?

शान्तिलाल : तुम भाग क्यों गई ?

रेखा : मैं जाना चाहती थी ।

शान्तिलाल : नहीं, यह बात नहीं, तुम्हें माँ की बातें बुरी लगें; पर मैं कहता हूँ उनकी...

रेखा : नहीं, मुझे किसी की बात बुरी नहीं लगती । मैं स्वयं जाना चाहती हूँ ।

शान्तिलाल : बहन को इस दशा में छोड़कर भी !

रेखा : मैं रहूँगी तो बहन न बचेगी ।

तूफ़ान से पहले

शान्तिलाल : तुम चली जाओगी, तो मैं न बचूँगा !

रेखा : [व्यंग से मुस्कराती है ।] तुम, ओह !...बच सकते हो, तुम्हें कुछ न होगा । तुम जो एक प्रेयसी के कंकाल पर बैठकर दूसरी से प्रेम कर सकते हो ! कंकाल, हाँ कंकाल ही तो ! बहन में अब क्या रखा है ? हड्डियों का एक ढाँचा समझ लो । तुमने उससे कितना प्यार न जताया होगा, कितने वादे न किये होंगे, कितनी बार कहा होगा, मैं तुम्हारे बिना न जी सकूँगा छाया, तुम्हारे बिना न बच सकूँगा । अब वही तुम अपनी उसी छाया की उपस्थिति में एक दूसरी से मुहब्बत जता रहे हो, उससे कह रहे हो—मैं न बचूँगा ! तुम पुरुष हो, तुम्हारा कोई भरोसा नहीं, तुम पाषाण हो तुम्हारा दिल पत्थार का है ।

शान्तिलाल : रेखा, मैं पत्थर-दिल नहीं, दिल तो कब का पानी हो चुका है !

रेखा : पत्थर-दिल नहीं ! [व्यंग से हँसती है ।] ज़रा सोचो, ज़रा खयाल करो, बहन का खयाल करो, बीते दिनों का खयाल करो, अतीत की स्मृतियों का खयाल करो, उसकी बीमारी का खयाल करो, उसकी पल-भर को मिट जानेवाली आकाक्षाओं, हसरतों और अरमानों का खयाल करो और फिर अपनी संग-दिली का खयाल करो ।

शान्तिलाल : तुमने मुझे सबकुछ भुला दिया है, तुमने मुझे पागल बना दिया है ।

रेखा : इसीलिए मैं जा रही हूँ, तुम पागल न बनो, होश में आओ, अपने कर्तव्य को पहचानो ।

शान्तिलाल : रहो, जाओ मत । जिस तरह कहोगी, करूँगा । यों पागल बनाकर न चली जाओ, मैं कुछ न कर सकूँगा । तुम मेरे पास रहो, मुझे आदेश दो, मैं वैसा ही करता जाऊँगा ।

रेखा : तुम नहीं समझते—नहीं समझते, मेरे रहने से बहन को कितना दुःख होगा । तुमने उसके वे शब्द नहीं सुने, उसके हृदय में उठते हुए

पापी

तूफान का अनुमान नहीं किया, उसे अचेत होते नहीं देखा—हाँ ! मैं उस पर, अपनी बहन पर, बीमार, मरनेवाली बहन पर इतने अनर्थ ढाने-वाली हो गई ! मुझे मौत क्यों न आ गई, मैं मर क्यों न गई ?—छोड़ दो, छोड़ दो, मुझे जाने दो !

शान्तिलाल : रेखा, आग लगाकर तुम जाना चाहती हो ?

रेखा : मैं कुछ नहीं जानती, मैं कुछ नहीं जानती । तुमने मुझे अपना कर्तव्य भुला दिया है । तुमने, तुम्हारी मीठी, मादक, बातों ने, तुम्हारे जादू-भरे शब्दों ने मुझे अपने-आप में नहीं रखा; पर अब नहीं । मैं स्वयं जली जा रही हूँ, यहाँ से जाकर भी मैं सुखी न रह सकूँगी, मैं जलती रहूँगी, मैं जलती रहूँगी; लेकिन मैं जाऊँगी, यह अनर्थ है, यह अन्याय है !

[हाथ छुड़ाकर भाग जाती है ।]

शान्तिलाल : [उठकर उसके पीछे जाता है ।] रेखा !

रेखा : [आँगन से] मेरे पीछे मत आओ, बहन के पास जाओ !

शान्तिलाल : रेखा, रेखा !

[उसके पीछे जाता है । पहले दरवाजे से मां प्रवेश करती है ।]

माँ : शान्तिलाल, शान्तिलाल, वह तुम्हें बुलाती है, वह तुमसे कुछ कहना चाहती है !

[आँगन के दरवाजे से निकल जाती है । पहले दरवाजे से उषा प्रवेश करती है ।]

उषा : माँ, माँ !

[माँ के पीछे आँगन को जाती है, आदिस्ता-आदिस्ता घिसटती हुई छाया प्रवेश करती है, किवाड़ का सहारा लेकर खड़ी होती है ।]

छाया : [उन्मादिनी की भाँति] तुम न आओ, तुम न आओ । मैं स्वयं आती हूँ । दोष मेरा है । तुम रुठ हो, किन्तु मरनेवाली से

तूफान से पहले

रोष कैसा ? [खँसती है ।] तुम्हें क्रोध होगा । मैंने तुम पर सन्देह किया, अपनी माँ-जाई को अविश्वास की दृष्टि से देखा; लेकिन मैं मौत की अँधेरी खोह पर खड़ी हूँ । जानें कब अथाह अंधकार में गुम हो जाऊँगी, मैं होश में नहीं हूँ । [जोर से खँसती है ।] मुझे क्षमा कर दो । तुमने मेरी बहुत बेवा की, सात जन्म इसका बदला न चुका सकूँगी । ईश्वर करे, अगले जन्म में फिर तुम्हारी दासी बनूँ और तुम्हारी सेवा करते-करते प्राण दूँ ।

[सर में चक्कर आता है, बैठते-बैठते गिर पड़ती है । मां आँगन से दौड़कर आती है ।]

माँ—छाया, छाया !

छाया—[भागकर आती है ।] भौजी, भौजी !

[छाया धीरे-धीरे आंखें खोलती है, सोंस चढ़ी हुई है । मां उसका सर अपनी गोद में रखती है ।]

छाया—मां, मेरे सब दोष क्षमा कर देना । मैंने तुम्हें बहुत दुख दिया है ।

माँ—आराम कर बेटी, तू थक गई है ।

छाया—बस, अब आराम ही करना है, अनन्त विश्राम की गोद में सोना है, अपने पाँव झुवर लाओ मां, उनकी धूल अपने माथे पर लगाऊँ ।

[माँ रोती है, छाया उसके पाँवों की धूल अपने मस्तक को लगाती है ।]

छाया—माँ, मैंने उन पर सन्देह किया, व्यर्थ ही उन्हें दोष दिया । उनसे कहना मुझे क्षमा कर दें, मैं मर रही हूँ ।

माँ—उस पापी का नाम न लो, राम-राम कहो ।

छाया—वे आयें तो उनके चरणों की धूल मेरे माथे पर लगा देना ।

[आँखें बन्द हो जाती हैं ।]

माँ—छाया, बेटी !

पापी

[रोने लगती है ।]

ऊषा—भौजी, भौजी !

[रोती है ।]

माँ—[सिसकते हुए] बस, स्नेह समाप्त हो गया । दिया बुझ गया ।
उषा, रोशनी बुझा दो । इसे आँगन में ले चलो ।

[उषा बिजली का एक बटन दबाती है, एक बल्ब बुझ जाता है, दो स्त्रियाँ प्रवेश करती हैं ।]

एक—मर गई !

माँ—[केवल रोती है ।]

दूसरी—बेचारी ने बड़ा दुःख पाया ।

[उषा दूसरा बटन दबाती है । सब शव को उठाकर ले जाती हैं । उषा तीसरी बत्ती बुझाती है । कमरे में अँधेरा हो जाता है, केवल आँगन और उधर के झरोखों से प्रकाश की क्षीण रेखाएँ ड्राइंग रूम को थोड़ा-सा रोशन रखती हैं । शान्तिलाल प्रवेश करता है ।]

शान्तिलाल—चली गई ! रेखा भी चली गई, छाया भी चली गई ! चारों ओर अँधेरा है, चारों ओर तारीकी है । केवल मैं इस अन्धकार में भटकने के लिए रह गया हूँ । छाया देवी थी, रेखा भी देवी थी, मैं ही नीच हूँ, मैं ही पापी हूँ !

[कुर्सी में घँस जाता है ।]

[पर्दा अचानक गिर पड़ता है ।]

नया पुराना

पात्र :

देवचन्द (रंगमंच के बाहर गजेन्द्र) प्रतिभा
रविदत्त भाभी
कमल
अचल बैठा रहनेवाला व्यक्ति

समय :

छै-साढ़े छै बजे सुबह

स्थान :

देवचन्द के मकान का एक कमरा

[जिस कमरे में पर्दा उठता है, उसमें दायें-बायें दो दर्वाज़े हैं, दाईं दीवार का दर्वाज़ा काफी बंद है और मकान के बाहर दूसरे हिस्से को जाता है, बाईं दीवार का दर्वाज़ा परे कोने में है और एक छोटी-सी कोठड़ी को जाता है, इस पर गहरे मूंगिया रंग का पर्दा है, जिसका रंग प्रातः के धुंधले में स्याह दिखाई देता है। सामने की दीवार में दो खिड़कियां हैं, जिनके किवाड़ों में शीशे लगे हुए हैं, सूरज यद्यपि सामने के मकान के पीछे से निकल चुका है, तथापि खिड़कियों से उसकी रोशनी अभी कमरे में नहीं पहुँची। हां, किसी किसी किरण का प्रतिबिम्ब कभी कभी शीशों में झिलमिल जाता है। यों कमरे में अपेक्षाकृत अँधेरा है।

दाईं ओर के दर्वाज़े के साथ परे को अँगीठी है, जिस पर कपड़ा बिछा हुआ है और उस पर शेविंग का सामान, क्रीम की शीशी, पाउडर का डिब्बा — कहने का मतलब यह कि स्त्री-पुरुष दोनों के टॉयलेट का सामान रखा है। इस अँगीठी के परे, एक अल्मारी है, जिसका एक पट खुला है और इसमें करीने से रखे हुए कपड़ों की तहें साफ़ दिखाई दे रही हैं। इस अल्मारी के साथ एक खिड़की के पास आराम कुर्सी रखी है।

बाईं दीवार में, अन्दर कोठड़ी को जानेवाले दर्वाज़े के इस ओर एक अल्मारी है, जिसमें ताला पड़ा हुआ है।

कमरे के मध्य तिपाई और दो कुर्सियाँ पड़ी हैं, जिन पर दो एक कपड़े बे-तरतीबी से रखे हुए हैं। सामने की दीवार में खूंटियाँ लगी हैं, जिन पर बेपरवाही से कपड़े टँगे हुए हैं।

पर्दा उठते समय कमरे में एक अव्यवस्था-सी दिखाई देती है, अँगीठी की चीज़ें भी अस्त-व्यस्त हैं, खूंटियों के कपड़े यों ही एक दूसरे के ऊपर टँगे हुए हैं और फर्श पर भी एक दो कपड़े बे-तरतीबी से पड़े दिखाई देते हैं।

तूफ़ान से पहले

खिड़की के पास एक व्यक्ति आराम कुर्सी पर चुपचाप पड़ा है । चूँकि वह कोई हरकत नहीं करता और उस कोने में अपेक्षाकृत अंधेरा है, इसलिये पहली बार देखने पर वह नज़र नहीं आता । ध्यान से देखने पर मालूम होता है कि उसने पूरे कॉलर की कमीज़ और पतलून पहन रखी है और धीरे धीरे सिगरेट पी रहा है ।

तिपाई के बाईं ओर देवचन्द परेशान-खा बैठा है, ज़ाहिर है कि उसने अभी तक स्नान, आदि नहीं किया । रविदत्त यद्यपि दूकान पर जाने के लिये बिल्कुल तैयार है, तथापि अभी तक उसने बाल नहीं बनाये । शायद उनके मध्य अचानक आरम्भ हो जानेवाले कटु प्रसंग ने इस बात का अवसर ही नहीं दिया ।]

रविदत्त : [एक हाथ में शीशा और दूसरे में कंघी थामे हुए] मैं कहता हूँ दबा जाओ सब, फिर ऐसा अवसर हाथ न आएगा । [फिर बाल बनाने लगता है ।]

देवचन्द : [आश्चर्य और क्रोध के साथ] रवि !

रविदत्त : [बाल बनाना छोड़कर] तुम तो पागल हो, पचास साठ हज़ार के गहने कोई मामूली चीज़ नहीं, जीवन में ऐसे अवसर बार-बार नहीं आते । [फिर बाल बनाने लगता है ।]

देवचन्द : लेकिन वह तो अमानत है । [उठकर बेचैनी से घूमने लगता है ।]

रविदत्त : [फिर बाल बनाना छोड़कर] अमानत है तो क्या हुआ, इस समय तो वह सब तुम्हारे कब्जे में है और फिर कोई लिखा पढ़ी नहीं, रसीद पर्चा नहीं, गवाह शहादत नहीं, मैं कहता हूँ बस पी जाओ । [हँसता है ।] कोई तुम्हें पूछनेवाला नहीं । [फिर बाल बनाने लगता है ।]

देवचन्द : लेकिन यह तो धोका है—कपट ! [फिर घूमने लगता है ।]

नया पुराना

रविदत्त : [फिर बाल बनाना छोड़कर] दुनिया में कौन धोका नहीं करता, यह बड़े बड़े साम्राज्य, बड़े बड़े राष्ट्र, बड़ी बड़ी संस्थाएँ, बड़े बड़े व्यापार—ये सब क्या छल कपट पर नहीं चलते ? बड़े बड़े नेताओं और विजेताओं की सफलता और ख्याति की नींव क्या कपट और छल पर नहीं रखी गई ? रात दिन तुम इस नारकीय स्कूल में झक झक करते रहते हो । मेहनत करते हो, मरते हो, आँखें और दिमाग फोड़ते हो और इस सब परिश्रम के बदले में तुम पाते क्या हो ?—इज़त और आराम की रोटी भी तो तुम्हें प्राप्त नहीं, ठीक तरह से खा-पी भी तो नहीं सकते, मैं कहता हूँ—बस पी जाओ, दुनिया में धोका वही है, जो उसकी आँखों से छिपाया न जा सके । [फिर कंधी बालों तक ले जाता है ।]

देवचन्द्र : [हैरान है कि कौनसी बात सच्ची है और कौन-सी झूठी] लेकिन मन की आँख-आत्मा की आँख.....[फिर कुर्सी पर बैठ जाता है ।]

रविदत्त : [फिर बाल बनाना छोड़कर] मन और आत्मा का खयाल रखने-वाले सदैव पिछली पंक्तियों में खड़े रहते हैं, निचली घाटियों में गिरे रहते हैं, आगे बढ़ना या ऊँचे उड़ना उनके भाग्य में नहीं ।

देवचन्द्र : नहीं रविदत्त, यह अमानत में खयानत है ।

रविदत्त : [हँसता है ।] अमानत में खयानत...तुम बिल्कुल भोले हो मित्र ! दुनिया में हर बड़ा छोटे का, हर सबल निर्बल का और हर ऊँचा नीचे का माल छिनता है, उसकी अमानत में खयानत करता है ।

देवचन्द्र : [अपने मन से लड़ते हुए] नहीं, नहीं, मेरा स्कूल...

[उठकर फिर बेचैनी से घूमने लगता है ।]

रविदत्त : साठ हजार रुपयों से तुम ऐसे दस स्कूल चला सकते हो ।

देवचन्द्र : [रुककर] मेरे बारह वर्ष के परिश्रम और दयानतद्वारी से हासिल की हुई प्रतिष्ठा.....

तूफ़ान से पहले

रविदत्त : इस रुपये के बल पर सिर्फ़ दो वर्षों में तुम इससे कहीं अधिक प्रतिष्ठा प्राप्त कर सकते हो ।

देवचन्द्र : दयानतदारी.....

रविदत्त : रुपये का दूसरा नाम दयानतदारी है । [हँसता है ।] ग़रीब की दयानतदारी भी बददयानती समझी जाती है ।

देवचन्द्र : [अनुनय के स्वर में] तुम मुझे बहकाओ नहीं रवि ! तुम रानी हार वापस दे दो ।

[रवि केवल हँसकर बाल बनाने लगता है ।]

—[रुक कर] तुम नहीं जानते रवि, लली की माँ ने मुझ पर कितना विश्वास किया है ! आख़िर मेरी पोज़ीशन ही क्या है ? एक साधारण प्राइवेट स्कूल का मामूली प्रिंसिपल ! [हँसता है ।] जिसे तुम मैनेजर भी कह सकते हो और टीचर भी । मेरे स्कूल में डेढ़ सौ लड़कियाँ पढ़ती हैं—माना, लेकिन सौ डेढ़ सौ लड़कियों को पढ़ानेवाले स्कूल टीचर पर कौन इतना भरोसा कर सकता है ? लली की माँ ने किसी प्रकार का संकोच किए बिना, अपनी विपत्ति के समय, अपने साठ हजार के गहने मेरे हवाले कर दिये । नहीं, मैं उसके विश्वास को खोना नहीं चाहता ।

[फिर बेचैनी से कमरे में घूमता है ।]

रविदत्त : [बाल, आदि बनाकर शीशे और कंधी की तिपाई पर रखते हुए] उसने अपने सब गहने तुम्हारे हवाले करने में परले दर्जे की मूर्खता की और उन सब को फिर उसे वापस देकर तुम उससे भी बड़ी मूर्खता का सबूत दोगे !

[अँगोठी से क्रीम लेकर मुँह पर मलता है ।]

देवचन्द्र [उसके पास जाकर] तुम ने जब रानी हार मांगा था तो भी यही कहा था कि उससे पूछने की क्या ज़रूरत है, तुम जो गहना चाहो अपने काम में ला सकते हो, लेकिन तुम्हें याद होगा, मैंने उस समय

नया पुराना

भी यही उत्तर दिया था कि जिसकी अमानत है उसकी आशा लिये बिना मैं ऐसे नहीं हाथ लगा सकता; पर उसका विश्वास तो देखो, उसने कहा—“ भाई साहब से पूछने की क्या आवश्यकता थी। सब गहने तो आप ही के पास हैं। जो चाहते उठा कर देते। ”

देवचन्द्र—[फिर उसके पास जाकर] यह सब क्यों हुआ ? उसने मुझ पर क्यों इतना विश्वास कर लिया ? तुम शायद नहीं समझ सकते। यह सब विश्वास, यह सब भरोसा मैंने बारह साल के कठिन परिश्रम से प्राप्त किया है, तो क्या तुम चाहते हो इतने परिश्रम से प्राप्त किये हुए विश्वास-धन को मैं लोलुपता के एक क्षण में नष्ट कर दूँ ?

रविदत्त—[कोट पहनता हुआ हँसता है।] अरे किसका विश्वास और किसका भरोसा ! लली की मां सब गहने तुम्हें न देती तो और क्या करती ? यदि उसके पास रहते, तो वह उसका व्यसनी पति अब तक उन्हें कब का ठिकाने लगा चुका होता, उसने तुम्हें दे दिये, तुम्हारे पास उनके बचने की सौ में से एक बिस्वा तो आशा थी, उसके यहां तो इतनी भी न थी ! कमल कहता है

देवचन्द्र : [लगभग चीखकर] कमल ! वह सिर-फिरा लेखक— उसकी संगति ने तुम्हें इतना गिरा दिया है कि आज तुम बददयानती की खूबी समझने लगे हो। हरि कृष्ण की दूकान से मैंने उसे बीस रुपये की किताबें लेकर दीं—आज एक साल होने को आया है उसने एक पैसा तक नहीं दिया, दूकानदार के तगादों से नाक में दम आगया। मैंने कमल से उसका हिसाब चुकाने को कहा, हँसकर कहने लगा, “ इन पूँजी-पतियों के रुपये यार लेना अनुचित नहीं। ” आखिर वे रुपये मुझे देने पड़े। छल, कपट, धोखा, फरेब, बददयानती, बदमाशी, जालसाजी— हरेक के लिये वह अपने प्रगतिशील फलसफे से कोई न कोई दलील निकाल लेता है, उसके खयाल में मानव छली और कपटी के सिवा कुछ नहीं। वह प्रगतिशील नहीं, अगतिशील है। प्रगति के नाम पर कलंक है।

तूफान से पहले

रविदत्त : [कपड़ों की अलमारी में रूमाल ढूँढ़ते हुए] तुम्हारे भाग्य में असफल रहना लिखा है !

देवचन्द्र : वाह्य सफलता ही सब कुछ नहीं, आन्तरिक सफलता भी कुछ चीज़ है। वाह्य शांति की अपेक्षा मैं आन्तरिक शांति को अधिक महत्व देता हूँ।

[कमरे में तेज़ तेज़ धूमता है।]

रविदत्त : [शीशे में देखकर टोपी को सिर पर सजाता हुआ] यह कपड़ों का फ़लसफ़ा है।

देवचन्द्र : [पलटकर] फ़लसफ़ा छोड़ो ! तुम यह बताओ कि रानी हार वापस दोगे या नहीं ?

[रवि केवल हँसता है।]

रविदत्त : देखो चार महीने तुम्हारी शादी को हो गये, मैंने स्वयं इस बीच में तुम्हें कुछ नहीं कहा, पर अमानत तो अमानत है, अब जहाँ से उसे लिया है, वहीं उसे रख देना चाहिये।

[टोपी सिर पर सजाकर रवि केवल हँसता है।]

देवचन्द्र : [दुख और क्षोभ के स्वर में] तो क्या तुम सचमुच रानी हार नहीं दोगे ? देखो, इतनी देर से हम इस मकान में इकट्ठे रहते आ रहे हैं, किसी दूसरे को यह भी नहीं मालूम हुआ कि हम सम्बन्धी नहीं, केवल मित्र हैं, सब हमें भाई-भाई समझते हैं। दुख में, सुख में हम ने एक दूसरे का साथ दिया है, किसी तरह का झगड़ा, किसी तरह की लड़ाई हमारे इस सम्बन्ध को नहीं तोड़ सकी—तो क्या तुम इस सम्बन्धित रानी हार को इस वर्षों की मित्रता के मध्य एक भयानक खाड़ी बन जाने दोगे ? [भरे हुए गले से] रवि.....रवि.....!!

[कमल प्रवेश करता है।]

कमल : क्या बात है ? किस बात पर बहस हो रही है ?

नया पुराना

रविदत्त : अरे है क्या, इसके.....

देवचन्द : [चीखकर] रवि !

कमल : मैं पूछता हूँ, तुम दूकान पर कब जाओगे ? मैं माँ जी को वहाँ बैठा आया हूँ और दूसरे रोगी भी तो बैठे हैं वहाँ ।

रविदत्त : [कोने से छड़ी उठाकर चलता हुआ] क्या हाल है उनका ?
[घूमकर] देव, तुम भी उठो, नहाओ, कपड़े पहनो, तुम्हारे स्कूल का भी तो समय हो गया है ।

[रवि कमल के साथ चला जाता है । देवचन्द कुर्सी में घँस जाता है और मस्तक पर हाथ रखकर सोचने लगता है । प्रतिमा प्रवेश करती है ।]

प्रतिमा : आप अभी तक बैठे हैं, स्कूल नहीं जाएँगे क्या ? और मैं नास्तर्लाने में देर कर दूँ तो आकाश सिर पर उठा लेते हो !

[देवचन्द दूसरा हाथ भी मस्तक पर रखकर और भी निमग्नता से सोचता है ।]

प्रतिमा : चलिये, नहाइये, धोइये, खाना खाइये ! भाई को चाबियाँ भिजवाइये कि वह समय पर स्कूल खोले ।

[देवचन्द लम्बी सोंस भरकर विवशता से पीछे को लेट जाता है । उसका सिर कुर्सी की पीठ पर और बाँहें दोनों ओर बेवसी से लटक जाती हैं । फिर कुछ क्षण बाद वह उठता है और उद्विग्नता से घूमने लगता है ।]

प्रतिमा : आप इतने उदास और परेशान क्यों हैं ?

देवचन्द : मैं सोच रहा हूँ ।

प्रतिमा : क्या सोच रहे हैं आप ?

देवचन्द : आज रवि ने मुझे एक बड़ी मुश्किल में डाल दिया है ।

तूफ़ान से पहले

प्रतिमा : वैद्यजी ने ?

देवचन्द्र : हाँ, वैद्यजी ने !

प्रतिमा : बात क्या हुई ?

देवचन्द्र : आज मैंने उसे हार वापस करने को कहा और वह टाल गया ।

प्रतिमा : दे देंगे, कहीं ले तो जाएँगे नहीं और चार दिन पहन लेने दीजिए भाभी को, अभी चार महीने तो हुए हैं शादी हुए । माँगते शरमाते होंगे ।

देवचन्द्र : [रुककर] तुम चार दिन कहती हो, मैं चार महीने भी पहनने की आशा दे सकता हूँ, यदि गहने मेरे हों; लेकिन वे तो धरोहर हैं और फिर वह उन्हें वापस ही कब देना चाहता है ! एक रानी हार पर ही उसका दिल बेईमान हो गया और फिर तुरा यह कि मुझे भी अमानत में ख़यानत करने की सलाह देता है । कहता है सब कुछ चुपचाप दबा जाओ !

प्रतिमा : अमानत में ख़यानत कैसी ? वह सब कुछ तो आप ही का है ।

देवचन्द्र : [चीखकर] प्रतिमा !

प्रतिमा : चीखिये नहीं, गेरी ज़बान से कोई नयी बात नहीं निकली और न आपके कानों ने...

देवचन्द्र : तुम्हें शर्म नहीं आती ? यदि वह मेरे गहने होते तो मैं तुम्हें नहीं देता । तुम्हें याद होगा, तुम बलदेव की शादी पर जा रही थीं, तुम ने इशारा भी किया था, पर मैंने तुम्हें एक तीली तक को हाथ लगाने से मना कर दिया ।

प्रतिमा : हाँ, मैं आपकी कौन होती हूँ, लेकिन याद है जब वैद्यजी ने मांगा था तो सब से भारी गहना उठाकर दे दिया था ।

देवचन्द्र : ऋली की मां से पूछे बिना मैंने हाथ तक नहीं लगाया ।

प्रतिमा : तो क्या उस समय न पूछ सकते थे ?

नया पुराना

देवचन्द्र : मैं किसी के विस्वास का अनुचित लाभ नहीं उठाना चाहता ।

[फिर धूमने लगता है ।]

प्रतिमा : ये बहाने रहने दीजिए ।

[कुर्सी में धँस जाती है ।]

देवचन्द्र : [मुड़कर चीखते हुए] मैं बहाने बनाता हूँ ? [फिर स्वर भीमा करके] कई बार आदमी अपने मित्रों से अपने लिये कुछ नहीं कह सकता, यद्यपि दूसरों की सिफारिश करना उसके लिये सुगम होता है ।

[प्रतिमा चुप रहती है ।]

—और इसीलिये मैंने इनमें से किसी गहने को हाथ नहीं लगाया । तुम्हारे हाथों में एक चूड़ी नहीं रही, तुम्हारे कानों में एक फूल तक नहीं रहा, मैंने यह सब सहन कर लिया, पर मैंने यह कभी सहन नहीं किया कि किसी मेले, तमाशे, या त्योहार पर तुम इन अमानत के गहनों में से एक छोटी तीली तक भी पहनों । तुम दयानतदारी का मतलब ही नहीं समझती, तुम धर्म.....

प्रतिमा : [उठकर] धर्म की दुहाई न दीजिये, मैं इस धर्मात्मापन को जानती हूँ । एक स्त्री अपने पचास-साठ हजार के गहने एक दूसरे पुरुष के हवाले कर देती है, उसके लिये जान तक कुर्बान कर देने को तैयार रहती है और वह उसकी रिश्तेदार नहीं, नातेदार नहीं, कुटुम्ब कबीले में से नहीं.....

देवचन्द्र : [चीखता है ।] तुम क्या कहना चाहती हो ?

प्रतिमा : मैं जो कहना चाहती हूँ, आप भली भाँति जानते हैं ।

देवचन्द्र : यही न कि मैं बदमाश हूँ, पापी हूँ, दुराचारी हूँ । लली की माँ से.....प्रतिमा तुम बड़े तीखे घाव लगा रही हो । [भर्राई हुई आवाज़ से] मेरा दिल तो पहले ही रवि की बातों ने घायल कर दिया है ।

तूफान से पहले

प्रतिमा : [नर्म होकर] हो सकता है, आप पापी न हों, यह भी हो सकता है कि आप के दिल में कोई बुरा विचार न हो, पर मैं यह कभी नहीं मान सकती कि उसके दिल में भी कुछ नहीं, कोई नारी मन में किसी तरह का पाप रखे बिना किसी दूसरे पुरुष को इस तरह अपना सब कुछ सौंप सकती है, मैं इस बात को कभी भी नहीं स्वीकार कर सकती [देवचन्द चुपचाप घूमता है ।] और फिर वह पुरुष ही किसी सुकोमल भावना के बिना किस तरह इतनी भारी जिम्मेदारी अपने कंधों पर ले सकता है ? धोखा हो सकता है, चोरी हो सकती है, चोड़ इधर से उधर हो सकती है [भेद भरे स्वर में] और अब तो मुझे और भी सन्देह है कि यह सब कुछ एक दिन होकर रहेगा । [फिर ऊँची आवाज़ में] हमारी बिसात ही क्या है ? हम आयु-पर्यंत भी कमाते रहे तो इनमें से एक चीज़ की कीमत न चुका सकेंगे और आप क्या यह सब जानते नहीं । बताइए मैं इसे क्या समझूँ ?

देवचन्द : [घूमना छोड़कर] मैं सब गहने वापस कर दूँगा ।

प्रतिमा : आप.....

देवचन्द : मैं आज ही सब कुछ वापस कर दूँगा । [असीम पीड़ा से] तुम ने मुझे कभी नहीं समझा, प्रतिमा ! तुम सदैव मुझ पर झूठे अभियोग लगाती रही हो, अनकहनी बातें कहती रही हो, तुम ने कभी इस बात को तनिक-सा भी स्थान तो अपने हृदय में नहीं दिया, इतनी लड़कियाँ मेरे यहाँ पढ़ती हैं, दिन-प्रति-दिन मेरे स्कूल की ख्याति बढ़ रही है । क्या तुम्हारा विचार है कि तनिक-सी मैली आँख भी इन लड़कियों की आँखों से बची रह सकती है ? किन्तु भटके हुए पक्षी की भाँति तुम्हारा सन्देह कभी इस ढाल पर और कभी उस ढाल पर बैठा रहता है ।

प्रतिमा : [पिचककर] मैंने कभी अभियोग नहीं लगाया, मैं सदैव आपके हित की बात करती हूँ और आपने कई बार इस बात को स्वीकार भी किया है कि मेरी बातों से आपको लाभ हुआ है । आप ही सोचिये अब

नया पुराना

तो मैं घर पर रहती हूँ, खूब चौकसी रखती हूँ। कलकलौं कुछ दिनों के लिये मैके चली जाऊँ और फिर पीछे कोई चीज़ इधर उधर हो जाए तो क्या होगा ? आप लाख सच्चे हों, लाख दयानतदार हों, पर कोई आप की बात न मानेगा। जो बातें आपके सपने में भी नहीं आईं, वे ही आपको सुननी पड़ेंगी।

[देवचन्द बेचैनी से घूमता है।]

प्रतिमा : और फिर जिस व्यक्ति का मन एक रानीहार पर इतना बेईमान हो सकता है, उससे और किस बात की आशा की जा सकती है ?

देवचन्द : मैं आज ही सब गहनें वापस कर दूँगा, अपनी विपत्ति के समय अपने शराबी पति के डर से, उसने सब आभूषण मेरे पास अमानत रख दिये थे। “ लली कल बड़ी हो जाएगी तो मैं उसकी शादी कैसे करूँगी ? ” उसने कहा था, “ उस समय तक तो एक तीली भी न बचेगी। ” और उसकी विनय और विपत्ति को देखकर मैंने यह बोझ अपने कंधों पर लेना स्वीकार कर लिया था, मैं आज ही सब कुछ वापस कर दूँगा। [और भी ऊँची और भारी आवाज़ में] मेरी ओर से कोई सारे के सारे गहने उड़ाकर ले जाए, उसका शराबी पति उन्हें एक रात के जुए में गँवा दे, रंडियों को खिला दे, शराब में उड़ा दे, [धीमे और भरे हुए स्वर में] मेरी ओर से लली का विवाह न हो, वह निर्दोष, भोली-भाली लड़की अयोग्य भिखमँगे के हाथ पड़ जाए—मेरी बला से—मुझे क्या ? मैं आज ही उसके सब गहने वापस कर दूँगा।

[एक दो बार कमरे में चक्कर लगाता है।]

—तुम मेरी मदद करना, प्रतिमा !

प्रतिमा : मैं मदद करूँ ?

देवचन्द : देखो जब तक मैं वह रानीहार उन गहनों में न रख दूँ, मैं वह गहने वापस नहीं कर सकता। तुम रानीहार लेने में मेरी मदद करो,

तूफ़ान से पहले

माँगे से वह न मिलेगा और मैं नहीं चाहता कि भाभी को इसका पता लगे.....

प्रतिमा : [ठहाका मारकर हँस पड़ती है ।] मैं कहती हूँ, इतने अभिनय की क्या आवश्यकता है ? आपने मुझे क्या बिल्कुल ही बची समझ लिया है ? क्या मैं कुछ नहीं समझ सकती ? इतनी चिकनी चुपड़ी बातें, यह ऐक्टिंग सिर्फ़ इसी लिये न कि मैं रानीहार लेने में मदद दूँ और आप निश्चित हो जाएँ और गहने ज्यों के त्यों...

देवचन्द : [भरे हुए गले से] प्रतिमा !

[प्रतिमा चुप रहती है ।]

—अब मैं तुम्हें कैसे विश्वास दिलाऊँ ? मैं कसम खाता हूँ कि मैं सब गहने आज ही वापस कर दूँगा । तुम चाहो तो लली की माँ से कभी बात तक न करूँगा । चाहो तो लली का नाम रजिस्टर से ख़ारिज कर दूँगा । तुम एक बार यह रानीहार लेने में मेरी मदद करो । मैं चाहता हूँ कि जिस तरह मैंने उसकी अमानत ली है, उसी तरह उसे वापस कर दूँ । मैं तुम्हारी मिन्नत करता हूँ, प्रतिमा !

प्रतिमा : अच्छा अब उठो, नहाओ, खाना खाओ, कपड़े पहनो और स्कूल जाओ ! आज तीज का त्योहार है । हम दर्बार साहिब जाना चाहती हैं । मैं इस सम्बन्ध में सोचूँगी । अब उठो । देखो भाभी तैयार हो चुकी हैं ।

देवचन्द : ठीक ! [प्रसन्नता से हाथ पर हाथ मारकर] मुझे तरकीब सूझ गई है । सुनो यदि भाभी जाने को तैयार हुई है, तो उन्होंने ज़रूर ही सब गहने पहने होंगे । जब वे सब ट्रंक आदि बंद कर चुकें तो तुम बहाने से उन्हें इधर ले आना और फिर अचानक उनसे कहना “ यह रानीहार तुम ने क्या पहन लिया, इतना कीमती हार.....वहाँ बड़ी भीड़ होती है, इसको उतार जाओ, न जानें कोई खींचकर ही ले जाए । फिर हाथ मलती रह जाओगी ।

नया पुराना

प्रतिमा : अच्छा, मैं यह भी करके देख लेती हूँ । अब आप उठें.....

नौकरानी : [बाहर से] मास्टर जी, चाबियाँ दीजिए, स्कूल.....

देवचन्द्र : [प्रतिमा से] तुम मेरी चिन्ता न करो प्रतिमा, जैसे मैं कहता हूँ, वैसे ही करो । मैं आज ही लली की मां को उसकी अमानत लौटा दूँगा ।
[नौकरानी से] देखो माई, तुम जल्दी जाओ लली की मां को बुला लाओ, कहना ज़रूरी काम है, बिल्कुल न रुकें, जल्दी चली आएँ ।

[नौकरानी जाने लगती है ।]

—ठहरो !

[रुपया निकालकर फेंकता है ।]

यह रुपया ले जाओ, तांगे में ले जाना और तांगे में आना ।

नौकरानी : जी, उनका घर कोई बहुत दूर तो नहीं, तांगे की क्या आवश्यकता है ? पैदल.....

देवचन्द्र : मैं जो कहता हूँ तांगे में जाओ ! [फिर धीमे स्वर में प्रतिमा से] देखो मेरे नहाने-खाने की चिन्ता न करो और यदि स्कूल भी ज़रा देर से खुल गया तो आफ़त न आ जाएगी, लेकिन ये सब गहने मैं अभी, इसी वक्त लौटा देना चाहता हूँ । देखो प्रतिमा ! परमात्मा के लिए मेरी मदद करो । भाभी तैयार हो गई होंगी । मैं उन्हें अच्छी तरह जानता हूँ, वे सब आभूषण पहने बिना न जाएँगी । और अपनी हार तो उन्हें सब से अधिक पसन्द है । जाओ, जल्दी तैयार होकर उन्हें ले आओ और जैसे मैंने कहा है वैसे करो । चलो साड़ी बदलो....

प्रतिमा : आप का ध्यान किधर है आज ? अभी तो साड़ी बदली है ।

देवचन्द्र : लेकिन यह.....

प्रतिमा : मैं कोई नयी नवेली बहू नहीं । बस इन्हीं कपड़ों से चली जाऊँगी ।

देवचन्द्र : तो चलो !

तूफ़ान से पहले

[दोनों जाते हैं, पर देवचन्द फिर मुड़ आता है ।]

— [अपने आप] अलमारी को ताला लगा है, कम से कम उसे तो खोल जाऊँ, ताकि ताला ढूँढ़नेके लिये उन्हें दूर न जाना पड़े ।

[जल्दी जल्दी जब से चाबी निकालकर ताला खोलता है । और फिर चाबी ताले में ही छोड़कर बाहर चला जाता है ।

कुछ क्षण खामोशी

जिसमें परे कुर्सी पर बैठे हुए अचल व्यक्ति के मुँह से सिगरेट के धुँएँ के दायरे खिड़की की ओर जाते हुए दिखाई देते हैं ।

फिर प्रतिमा भाभी को साथ लिए हुए आती है । भाभी एक सीधी सादी मोटी गलगोथनी लड़की है । मुखाकृति प्रसन्न, किन्तु किसी तरह की भावना से शून्य, भड़कीले वस्त्रों में आवृत है । गहनों-कपड़ों की मुहब्बत उसके चेहरे पर लिली हुई दिखाई देती है ।

प्रतिमा : बस मैं ज़रा बालों में कंधी कर लूँ-बिखर गये हैं ।

[कुर्सी में बैठकर बालों में कंधी करती है ।]

— और तनिक ये चीज़ें करीने से रख जाऊँ, वैद्यजी मालूम होता है इधर उधर कर गये हैं, [हँसती है ।] उनकी आदत कभी न सुधरेगी । [शीशा, कंघा और क्रीम आदि करीने से अंगीठी पर रखती है ।] नहीं, मास्टरजी यों ही शोर मचा देंगे । उन्हें तो तनिक-सी अव्यवस्था भी बुरी लगती है । [कुर्सीयों पर बिखरे हुए कपड़े व्यवस्थाके के साथ खूटियोंपर टांगकर] तो पांवों में क्या पहनकर चले ? [कपड़ोंवाली अलमारी के निचले खाने से एक दो जूतों के जोड़े निकालती है ।] गुरगाबी पहन जाऊँ ? [उसे उठाकर देखती है । फिर उसे अलमारी में रख देती है ।] ना बाबा, वहाँ तो नंगे चलना पड़ेगा, कोई [और फिर जैसे उसने पहली बार ही अचानक देखा हो ।] ओर तुमने तो सब गहने पहन लिये ? ना बहिन, कम से कम यह रानीहार तो रख जाओ, इतनी भीड़ होती है वहाँ, कोई बदमाश.....

नया पुराना

भाभी : तुम ने मुझे पहले क्यों न बता दिया ? अब इतने ट्रंक कौन उठाए ?

प्रतिमा : ट्रंक में रखने की क्या ज़रूरत है ? इस अल्मारी में रख जाओ ताला लगाकर चाबी साथ ले जाओ । घंटे आध घंटे में तो हम वापस आ जाएँगे । मैं तो तुम्हारे ही हित की बात कर रही हूँ, कोई खींचकर ले गया तो हाथ मलती रह जाओगी ।

देवचन्द : [बाहर से] जल्दी करो, फिर वहाँ इतनी भीड़ हो जाएगी कि जाना भी कठिन हो जाएगा ।

भाभी : [द्वार उतारकर प्रतिमा को देते हुए] लो करो बंद इसे अल्मारी में ।

[प्रतिमा द्वार लेकर अल्मारी में बंद कर देती है ।]

प्रतिमा : और मेरी मानो तो कर्ण-फूल भी इसी में रख जाओ, भीड़ में इनके साथ कान भी खिंच जाते हैं ।

भाभी : ऐसा भी क्या अँधेर है, कर्ण-फूल तो मैं नहीं उतार सकती, मुझे बुझा बुझा रहना पसंद नहीं ।

[दोनों जाती हैं । देव चन्द धीरे धीरे अन्दर प्रवेश करता है ।

प्रतिमा वापस आती है ।]

प्रतिमा : [धीरे स्वर में] रानीद्वार इस अल्मारी में बन्द है । यह लो चाबी ।

देवचन्द : चाबी की ज़रूरत नहीं तुम, भाग जाओ ।

[प्रतिमा चली जाती है । देव चन्द कुछ क्षण तक खिड़की में जाकर बाहर की ओर देखता है । फिर वापस आता है दरवाज़ा लगा देता है और फिर इधर उधर कुछ ढूँढ़ता है ।]

—अपने आप आज मुझे अपने घर में चोर बनना पड़ेगा ।

[अन्दर कोठड़ी में जाकर हथौड़ी लाता है ।]

—[हाथौड़ी को हाथ में उछालता हुआ] तुलसीदासने कहा है, “ धीरज-धर्म मित्र और नारी-आपद काल परखिये चारी । ”

तूफान से पहले

[हथौड़ी से ताले को तोड़ कर माला बाहर निकालता है और उसे हाथों में उछालता है ।]

—किन्तु दूसरा चरण बदल देना चाहिए । आजकल तो यों होना चाहिए :
“ गरज पड़े तो परखिए चारी । ”

[हँसता है और हथौड़ी को फिर अन्दर कमरे में फेंक देता है ।
बाहर दस्तक की आवाज़ आती है । बढ़कर कुंडी खोलता है ।]

—आइये, आइये ।

[माई के साथ लली की मां प्रवेश करती है ।]

—[जेब से चाबी निकलकर माई को देते हुए] यह लो बाबा, जाकर स्कूल खुलवाओ । अध्यापिकाओं से कहना कि मैं आज दोपहर तक न आ सकूंगा ।

[माई चली जाती है ।]

—[लली की मां से] बैठिये !

लली की मां—[बैठते हुए] मैं तो डर ही गई थी । क्या बात है आपने इतनी जल्दी बुला भेजा ।

[देवचन्द अन्दर कोठड़ी में जाता है और कुछ क्षण बाद एक डिब्बा उठाकर लाता है और उसे लली की मां के सामने रख देता है और उस पर माला टिका देता है ।]

लली की मां—[हैरानी से] यह क्या ?

देवचन्द : आप की अनामत !

लली की मां : [और भी हैरान] लेकिन.....

देवचन्द : आप इसे ले जाँए ।

लली की मां : लेकिन आप ने वादा किया था कि आप लली की शादी तक इन्हें अपने पास रखेंगे ।

वेइया

पात्र :

	जवाहर
	मोती
निरंजन	गुलशन

स्थान :

जवाहर का सजा हुआ कमरा

देवचन्द्र : पर अब यह मुश्किल है ।

[लली की मां चुप सोचती है ।]

— मैं प्रतिमा के तानों से तंग आगया हूँ ।

लली की मां : प्रतिमा तो पहले भी ताने देती थी ।

देवचन्द्र : मुझे इनके चोरी हो जाने का डर है । नहीं, आप जिस तरह मुझे यह अनामत सौंप गई थीं, उसी तरह ले जाइये ।

लली की मां : चोरी तो मेरे यहाँ भी हो सकती है । कोई बहार से न आए तो घरवाला ही डाका डाल सकता है ।

देवचन्द्र : तुम नहीं समझीं लली की मां, मुझे बाहरके चोर का भय नहीं, अन्दर के चोर का डर है ।

लली की मां : यदि आप के चोरी हो जाएगी तो मैं समझूंगी मेरे चोरी हो गई है ।

देवचन्द्र : तुम बिल्कुल नहीं समझीं लली की मां । मुझे मन के चोर का डर है । मुझे स्वयं अपने आप से भय है । आज तक मुझे अपने आप पर पूरा विश्वास था, पर आज रवि की बातों ने उस विश्वास को तोड़ दिया है । तुम्हारे आभूषण दबाए भी जा सकते हैं, यह मैंने कभी न सोचा था; किन्तु; अब इस क्षण के बाद मैं कह नहीं सकता । मुझे मन का भरोसा नहीं ।

[डिब्बा और रानीहार उठाकर उसकी झोली में रख देता है ।
सहसा कुर्सी पर अचल बैठा रहने वाला व्यक्ति हिलता है ।]

अचल बैठा रहनेवाला व्यक्ति : बकवास !

[उठकर कमरे के मध्य आ जाता है ।]

तूफ़ान से पहले

—बन्द करो । क्या इसी की प्रशंसा के पुल तुम बाँध रहे थे ? मैं अब तक बड़ी कठिनाई से अपने आप को रोके बैठा रहा । पर अब यह सब बकवास बन्द करो । [असीम उपेक्षा से] सस्ती भावुकता, पुरानी, जीर्ण-शीर्ण थीम, और दक्कियानूसी ट्रीटमेंट । इसमें यथार्थता कहाँ है ? आजका युग यथार्थता का युग है और आज इसी के दृष्टि-कोण से जीवन को देखा जाता है । क्यों गजेन्द्र, क्या इसी की प्रशंसा तुम करते थे ?

[जिसे हम सिगरेट समझते थे, वह सिगार है । उसी का धुआँ चक्कर खाता हुआ छत की ओर बढ़ता है ।]

देवचन्द्र : [गजेन्द्र] पर यह तो सोलहो आने वास्तविक है । एक बिल्कुल सच्ची घटना से इस नाटक का कथानक लिया गया है ।

अचल बैठा रहने वाला व्यक्ति : तुम इसे यथार्थता कहते हो । कौन आज के ज़माने में साठ हजार की चीज़ वापस कर देगा ?

गजेन्द्र : पर मनीराम ही वह आदमी है ।

अचल बैठा रहने वाला व्यक्ति : चीखकर मनीराम मूर्ख है और आज यथार्थवादी का ऐसे मूर्खों का चरित्र-चित्रण नहीं करता । वह अपवादों को छोड़कर आम आदमियों की बात करता है । वह आदर्श के पीछे नहीं भागता, यथार्थ के पीछे दौड़ता है । वह सौंदर्य को नहीं, बीभत्स को चित्रित करता है । वह यथार्थवादी है—घोर यथार्थवादी । यह नाटक नहीं चलेगा । कोई और चुनो और देखो इस बार मसौदा मुझे दिखा लेना ।

[खट खट पांव रखता हुआ चला जाता है ।]

गजेन्द्र : [चकति और किंकर्तव्य विमूढ़] यथार्थ.....पर मैं कहता हूँ, यह तो सर्वथा सत्य है । [लली की माँ की ओर देखता हुआ] सोलहो आने सत्य, मनीराम.....

[पर्दा सहसा गिर पड़ता है ।]

वेइया

[सामने लम्बे कोच के एक कोने में जवाहर बेपरवाही से कुछ खोई हुई सी बैठी है—अधेड़ आयु की वेइया जो अपने रूप और लावण्य को बड़े यत्न पूर्वक सुरक्षित रखे हुए है। आकृति पर क्रोध, दुःख और चिन्ता झलक रही है। बायाँ हाथ कोच पर है, दायाँ नीचे लटक गया है। सिर पीछे दीवार के साथ लग चुका है और टाँगें गलीचे पर फैली हुई हैं।]

पर्दा धीरे धीरे उठता है।

कुछ क्षण तक इसी तरह निश्चेष्ट पड़ी रहती है, फिर सचेत होती है, जैसे इतनी देर सोचने के बाद मन में किसी निर्णय पर पहुँच गई हो।]

जवाहर : [जैसे अपने से] हाँ ऐसा ही होगा। मेरे अपमान का, मेरे प्रेम के अपमान का बदला ऐसा ही भयानक होगा, जब मैं तुम्हें पैसे पैसे को मोहताज दर दर की ठोकें खाते देखूँगी तो निरंजन [मुख क्रोध से बाल हो जाता है।] मेरे प्रतिशोध की ज्वाला शान्त हो जायगी।

[उठकर उद्विग्नता से घूमती है।]

मैं अपने हृदय को [रूकती है।] नारीके अपने इस सहज सुकोमल हृदय को जो ठुकराये जाने पर भी प्रेम करता है, दूसरे की निष्ठुरता को देखकर भी मोह नहीं छोड़ता, गाली का भी प्यार से उत्तर देता है—इस हृदय को वक्ष से निकाल फेंकूँगी और इसके स्थान पर निरादर का बदला लेनेवाले, अपमान का उत्तर देनेवाले क्रूर और कठोर दिल को अपना पथ-प्रदर्शक बनाऊँगी।

[किसी के आने की आदृष्ट होती है। जवाहर अन्यमनस्क सी उधर देखती है बायें दरवाजे से मोती प्रवेश करती है।]

मोती : मां !

तूफान से पहले

[जवाहर उसके पास जाती है, ध्यार से उसके सिर पर हाथ फेरती है। बलाएँ लेती है और फिर उसके साथ आकर कोच पर बैठ जाती है।]

मोती : मां !

जवाहर : [गलीचे की ओर देखते हुए] मोती !

मोती : तुम ने मुझे बुलाया था, मां ?

जवाहर : [उसी तरह देखते हुए] यदि कोई मेरा अपमान करे.....

मोती : तुम्हारा अपमान-कौन कर सकता है तुम्हारा अपमान, मां ?

[मुख लाल हो जाता है।]

जवाहर : यदि कोई मेरा अपमान करे और तुम में उससे बदला लेने की शक्ति हो तो कहो क्या, तुम अपनी माँ के अपमान का बदला न लोगी ?

मोती : क्यों न लूंगी ? मुझे बताओ किसने तुम्हारा अपमान किया है, और मैं क्या कर सकती हूँ ?

जवाहर : मोती, सोच लो, चाहे वह कोई हो, तुम्हें उससे बदला लेना होगा, जैसे मैं कहती हूँ उसी तरह बदला लेना होगा, तभी मेरी आत्मा को शान्ति मिलेगी, तभी मेरे हृदय में प्रतिक्षण धू-धू करके जलनेवाली ज्वाला शान्त होगी।

मोती : तुम कहो मां, वह कोई भी क्यों न हो—मैं उससे बदला लूंगी।

जवाहर : चाहे वह निरंजन हो !

मोती : निरंजन !

जवाहर : हाँ, निरंजन !

मोती : [तनिक अवेग से] तो मैं उससे भी बदला लूंगी, यदि उसने तुम्हारा अपमान किया है तो मेरा प्रतिशोध उससे भी बदला लेगा।

वेइया

जवाहर : भगवान तुम्हारी सुन्दरता को १०० वर्ष सलामत रखे मोती, तुमने मेरी आत्मा को ठंडा कर दिया । कहो मोती, एक बार फिर प्रतिज्ञा करो, तुम अपनी मां के अपमान का बदला लोगी, उस निरंजन से, उस सुन्दर सम्पन्न जल्लाद से, जिसने तुम्हारी मां को हेय समझा, उसका निरादर किया, उसकी अवहेलना की, उसकी इतनी भी परवाह न की, जितनी एक क्षुद्र तिनके की जाती है ।

मोती : [जैसे अपने से] अवहेलना की !

जवाहर : हाँ, जिसने इस जवाहर को अवहेलना के पैरों से ठुकरा दिया, इस जवाहर को जो मोती की मां है, उस अप्सरा सी मोती की माँ है, जिसके संकेत मात्र से घर के घर तहस-नहस हो सकते हैं, जिसकी भुकुटी पर बल पड़ते ही बड़े बड़े मानी सिर झुका देते हैं, जिसके फूल ऐसे गाल पर एक आँसू का बहना, एक दुनिया में हलचल मचा सकता है ।

मोती : [उसी तरह जैसे अपने से] मोती की मां का अपमान, मैं अवश्य बदला लूँगी । मैं प्रयास करूँगी ।

जवाहर : प्रयास नहीं मोती, प्रयास नहीं, तुम कहो—मैं निश्चय ही बदला लूँगी, आखिर तुम्हारे पास क्या नहीं ? तुम्हारी आँखों में जादू नहीं क्या ? तुम्हारी मुस्कान में बिजली नहीं क्या ? तुम्हारे रूप में आकर्षण नहीं क्या ? सब कुछ है, सब कुछ है, दाना भी है, दाम भी है । अपने अनुपम लावण्य का दाना बखेरो, फिर अपनी मीठी मादक बातों के जाल में उसे जकड़लो और फिर.....

मोती : [उसी तरह अपने ध्यान में मग्न] और फिर—?

जवाहर : जब पक्षी जाल में फँस जाए तो उसके पंख मरोड़कर उसे छोड़ दो—पंख मरोड़कर—हाँ, समझीं मोती—पंख मरोड़कर ! पंख न होंगे तो उड़ान न रहेगी, उड़ान न रहेगी तो अहंकार न रहेगा और अहंकार न रहेगा तो उसका वह उन्नत मस्तक नत हो जाएगा ।

तूफ़ान से पहले

मोती : [उसी तरह अपने ध्यान में मग्न] हाँ उसका मस्तक नत हो जाएगा ।

जवाहर : यह धन सम्पत्ति का ही दर्प है जिससे उसका सिर उठा रहता है, मस्तिष्क आकाश पर रहता है, विपन्न की सुन्दरता कैसी ? दौलत के पंख झकझोर दो उसकी सुन्दरता मिट्टी में मिल जाएगी । आज निरंजन दर्प से सिर उठाकर चलता है, कल उसकी आँखें धरती में गड़ी होंगी ।

मोती : [उसी तरह बे-खुदी में] मैं उसकी दौलत के पर काटलूँगी ।

जवाहर : फिर उसे घत्ता बता देना । उसे अपने घरसे धक्के देकर निकलवा देना । मैं उसे बे-सरा सामानी की हालत में गलियों की खाक छानता देखूँगी तो मोती मेरे हृदय की धधकती हुई ज्वाला शान्त हो जाएगी । [बेखुदी में जैसे अपने आप] उसने मेरी परबाह न की मेरी ज़रा भी परवाह न की, मुझे ठुकरा दिया ।

मोती : ठुकरा दिया !

[बाहर दस्तक की आवाज़ सुनाई देती है ।]

जवाहर : हाँ, ठुकरा दिया और मोती तुम्हें उसका बदला लेना होगा । आज कल वह तुम पर बुरी तरह आसक्त है, तुम्हारे इंगत पर अपनी जान कुर्बान करने को तैयार है तो क्या इस पर भी, उसे अपने अधिकार में पाकर भी तुम बदला न लोगी ?

मोती : तुम कैसा बदला चाहती हो मां ?

जवाहर : बस इसके पंख मरोड़ दो मोती, उसकी दौलत छीन लो, उसे दर-दर का मोहताज बना दो, उसे अपनी दौलत का, अपनी खूबसूरती का जो दर्प है, वह न रहे ।

[मोती जाती है । जवाहर फिर कोच में घँस जाती है ।]

वेश्या

— [जैसे अपने आप से] मुझे तुम से प्रेम था निरंजन —हाँ, प्रेम थ वेश्या का प्रेम दौलत से होता है, वह धन-वैभव से प्रेम करती है लेकिन मैंने तुमसे एक वेश्या का प्रेम न किया था, मैंने तुम्हें एक वेश्या का दिल न दिया था, मैंने तुम्हें जो दिल दिया था, वह केवल एक नारीका हृदय था, छल कपट से रहित नारी का हृदय। पर तुम ने उसकी कद्र न की, तुम ने उसे ठुकरा दिया। तुम्हें अपनी दौलत का, अपनी सुन्दरता का दर्प है, इसीलिए न ? पर देखना, इसी जवाहर की लड़की एक दिन तुम्हारा यह दर्प मिट्टी में मिला देगी, तुम्हारी दौलत ही न लेगी, तुम्हारी खूब-सूरती छीन लेगी और फिर एक दिन तुम्हें इसी जवाहर के कदमों में लोटना होगा।

[जल्दी जल्दी मोती का प्रवेश]

मोती : माँ, निरंजन आए हैं।

जवाहर : तो तैयार हो जाओ, अपनी सहचरी मदिरा को भी साथ रखना, मैं नीचे सब सामान तैयार रखूंगी-कागज़ भी अर्जिनवीस भी और गवाह भी। आज उसे अपनी सारी जायदाद अपने नाम पर लिखने के लिए विवश कर देना। पहले उसे शराब पिलाना, इतनी शराब कि वह चेतना खो बैठे और फिर सचेत होकर जब आए तो इस तरह अकड़कर नहीं बल्कि तुम्हारे दर का मेरे दर का भिखारी होकर !

मोती : तुम जाओ, उन्हें लाकर यहाँ बिठाओ, मैं भी कुछ क्षण बाद आ जाऊंगी।

[जवाहर जाती है।]

मोती : [जैसे अपने से] माँ कहती है, तुम्हारे पास क्या नहीं ? हाय माँ, तुम्हें क्या बताऊँ ? मेरे पास सब कुछ है, सुन्दरता है, लावण्य है, आकर्षण है, सब कुछ है, नहीं, तो एक ही चीज़ नहीं, एक ही चीज़ नहीं माँ, मेरा दिल ही मेरे पास नहीं, मेरा दिल ही मेरे काबू में नहीं।

[बैठ जाती है।]

तूफान से पहले

—माँ कहती है—निरंजन ने मेरा अपमान किया है, पर क्या अपमान किया है, यह नहीं बताया । [सोचती है, दीर्घ निश्वास छोड़ती है ।] कुछ नहीं, कुछ नहीं, कोई अपमान नहीं, कोई निरादर नहीं, माँ—तुम केवल उनकी दौलत चाहती हो, शायद तुम्हें मेरी दुर्बलता का पता चल गया है, तभी तो यह बहाने हैं । माँ, तुम निरंजन की दौलत चाहती हो, तुम्हें दौलत मिल जाएगी । [लम्बी साँस भरकर] हाय क्या वेश्या दौलत के बिना किसी से प्रेम कर ही नहीं सकती ? क्या किसी के भोले भाले हृदय का उसकी दूकान पर कोई मोल नहीं ?

[पैरों की चाप सुनाई देती है, मोती दार्यों ओर के दरवाजे का पर्दा उठाकर चली जाती है । बायीं ओर के दरवाजे से जवाहर और निरंजन प्रवेश करते हैं ।]

जवाहर : निरंजन प्यारे, तुम बैठो, मोती को मैं अभी जाकर बताती हूँ, सुनते ही सिर के बल दौड़ी आएगी । न जाने तुमने उस पर क्या जादू कर दिया है, न जाने तुम सब पर क्या जादू कर देते हो । जब से उसने तुम्हें देखा है, अपनी सुध-बुध भुला दी है, न ठीक तरह खाती है, न पहनती है, कुछ उखड़ी उखड़ी सी रहती है, लेकिन इस पर भी न वह प्रसन्न है, [दीर्घ निश्वास छोड़ती है ।] निरंजन, तुम जानते हो वह क्यों प्रसन्न है ?

[उसे मीठी मंदिर दृष्टि से देखती है और चली जाती है ।] निरंजन, ऊँचे कद का गोरा चिढ़ा सुन्दर वलिष्ठ युवक है । आँखों में बेहद आकर्षण है—ऐसा युवक जिसे जो भी देखे प्रेम करने लगे, जवाहर के चले जाने पर बेपरवाही से कोच पर बैठ जाता है, सिगरेट के एक दो कश लगाता है, धुआँ छोड़ता है, फिर दरवाजे की ओर देखकर उठता है, इधर उधर घूमता है, फिर कश लगाता है और धुआँ छोड़ता हुआ दीवार पर टँगे मोती के बड़े चित्र के पास जा खड़ा होता है ।]

वेश्या

निरंजन : [चित्र की ओर देखते हुए] मोती, मोती, जादू तुम फूंकती हो, या मैं, मद-मस्त तुम्हारी आँखें करती हैं, या मेरी ?

मोती : [दायीं ओर के पर्दे को हटाकर प्रवेश करती है ।] यह मेरी आँखों से पूछो ।

निरंजन : [मुड़कर] मोती !

मोती : निरंजन !

[दोनों एक निमिष के लिए एक दूसरे की ओर देखते हैं, फिर दोनों की निगाहें झुक जाती हैं ।]

निरंजन : [लम्बी सांस लेता है ।]

मोती : [लम्बी सांस लेती है ।]

[दोनों कोच पर बैठ जाते हैं ।]

निरंजन : अभी तुम्हारी माँ कह रही थी, तुमने मोती पर जादू कर दिया है । वह खाने पहनने की ओर से बेपरवाह हो गई है, मोती मेरी ओर देखकर सच कहना—मेरी आँखों ने तुम पर जादू किया है या तुम्हारी आँखों ने मुझ पर ? बे-परवाह मैं रहता हूँ या तुम ?

मोती : तुम कब बे-परवाह नहीं थे, तुम्हारा यह अन्दाज़ क्या कम दिल में घर करता है ? लेकिन मेरी बे-परवाही नयी है । मैं अपने प्रेम की वकालत नहीं करती; मैं वेश्या-सुलभ-अत्युक्ति से काम नहीं लेती; मेरी यह बेपरवाही बिल्कुल नयी है । इनमें वह जादू कहाँ जो इन आँखों में है ? काश वह इन आँखों में भी होता तो मैं तुम्हें अपने बस में कर लेती, अपनी आँखों में बिठा लेती, अपने दिल में छिपा लेती ।

[नौकरानी शीशे की ट्रे में मदिरा और दूसरा सामान लाकर रखती है, मोती प्याले में मदिरा ढालती है ।]

निरंजन : मोती, तुमने मुझे शराब पीने से रोका था ।

मोती : हाँ रोका था, पर आज मुझे तुम्हारी परीक्षा लेनी है और फिर शायद तुम्हें आज के बाद इस तरह शराब न मिले, इसलिये पियो निरंजन !

तूफ़ान से पहले

[निरंजन बे-परवाही से सिगरेट को ऐश ट्रे में फेंकता है, पीता है और गाता है ।]

क्यों इन आँखों के पीछे
दुनिया दीवानी होती ?
क्यों होश भुलाते जग का
इन दो सीपों के मोती
क्या छिपा हुआ है प्रेयसि
इन दो पलकों के अन्दर ?
और भरे हुए हैं इनमें
कितने मस्ती के सागर ?

तुम इन अपनी आँखों से
क्या यह सब जान सकोगी ?
मेरी आँखों से देखो
तो कुछ पहचान सकोगी ।

[मोती की आँखों की ओर इशारा करता है और फिर गाता है :]

तुम इन अपनी आँखों से
तुम इन अपनी आँखों से
तुम इन अपनी आँखों से
क्या यह सब जान सकोगी

मेरी आँखों से देखो
तो कुछ पहचान सकोगी ।

मोती : [शराब उँडेलते हुए मुस्कराती है ।] और यदि मैं भी यही गाऊँ, मैं भी यही कहूँ ।

[प्याला बँदाती है ।]

वेइया

निरंजन : [प्याला हटाकर] मोती बस ! नहीं मैं होश खो बैटूँगा ।

मोती : अच्छा है निरंजन, तुम होश खो बैठो ! तुम होश खो बैठो निरंजन ! !
मुझे आज तुम्हारी परीक्षा लेनी है और शायद अपने होश में तुम उस में पूरे न उतरो और मैं नहीं चाहती कि तुम इसमें असफल रह जाओ !

[निरंजन मोती की ओर देखता है-वहाँ गम्भीरता है, जोश से उठ खड़ा होता है ।]

निरंजन : तो मोती अभी परीक्षा लो, मैं असफल न हूँगा । मैं तुम से प्रेम करता हूँ, और मेरा यह प्रेम एक स्वस्थ धनी, युवक की कोरी वासना नहीं, यह आग दिल में लगी हुई है, तुम समझती हो, तुम कुछ कहोगी और अपने होशोहवास में मैं उसे पूरा न करूँगा-तुम ने मुझे कितना ग़लत समझा । [और जोश से] कहो तो यह जान दे दूँ, इस से बढ़कर मेरे पास और क्या है, लाओ विष का प्याला, मैं आँख मूँदकर उसे पी जाऊँगा ।

मोती : [अधीर होकर] निरंजन, बैठ जाओ । मैं तुम्हारे प्रेम में सन्देह नहीं करती, लेकिन मैं चाहती हूँ कि तुम वह सब कुछ कर सको, ओह ! तुम नहीं जानते—मैं स्वयं यह सब कुछ नहीं चाहती, पर यह आवश्यक है । यदि तुम न कर सके.....

निरंजन : मोती, कहो । भूमिका न बाँधो, जो कुछ कहना है, जल्द कहो ।

मोती : [खड़ी हो जाती है ।] माँ, मेरी कीमत माँगती है ।

निरंजन : कीमत...कीमत कैसी ? मैं तुम्हारा शरीर नहीं चाहता । मैं केवल तुम्हारा दिल चाहता हूँ, मैं सिर्फ तुम्हारा प्रेम चाहता हूँ । केवल यह चाहता हूँ कि तुम मुझे भी याद रखो, तुम चाहे जो करो, चाहे जिससे प्यार करो, पर मेरे लिये भी हृदय के किसी कोने में स्थान रखो, मुझे भी न भुलाओ !

मोती : [उसी अधीरता से] निरंजन बैठ जाओ !

तूफान से पहले

निरंजन : हाँ मोती, मेरा प्यार स्वार्थी नहीं ! वह पवित्र है । वह केवल तुम्हारे हृदय में-हृदय के किसी कोने में थोड़ी सी जगह चाहता है, इस से अधिक दे दो तो तुम्हारी कृपा है, पर जितना वह चाहता है, उसकी कीमत कैसी, सौदा कैसा—क्या प्यार खरीदा भी जा सकता है ?

मोती : निरंजन, मैं ऐसा नहीं चाहती । मैं तो इस घृणित व्यवसाय से सुन्दरता के इस व्यापार से उपेक्षा करती हूँ मैं इसे ज़रा भी पसन्द नहीं करती, मैं तो तन से, मन से, प्राण से तुम्हारी होना चाहती हूँ । मन मेरा है; वह तुम्हारे चरणों पर न्योछावर है, अपनाओ, चाहे ठुकरा दो, तन भी तुम्हारी भेंट है । तुम्हें यह भी ले लेना चाहिए । हाँ, इसकी कीमत देनी पड़ेगी । रहे प्राण ! सो यह प्राण भी तुम्हारे हैं । तुम ले सकते हो ।

निरंजन : तो कहो, मैं क्या दूँ, तुम्हारी माँ क्या चाहती है ?

मोती : निरंजन, बैठ जाओ !

निरंजन : पहले कहो ।

मोती : वह तुम्हारी सब जायदाद चाहती है !

[निरंजन कोच में धँस जाता है । मोती चुपचाप उसकी ओर देखती है ।]

निरंजन : [लम्बी सांस लेकर]-तो यों ही सही, मुझे स्वीकार है ।

मोती : मुझे स्वीकार नहीं, तुम्हें दुख होता है । तो न सही, मैं इस नरक ही में रह लूंगी और तुम्हें याद कर लिया करूंगी ।

[निरंजन मुस्कराता है ।]

मोती : तुम हँसते हो ।

निरंजन : मुझे हँसी आती है, तुम बिल्कुल ऐसी ही बातें करती हो जैसी दूसरी वेश्याएँ । तुम प्रेम को रुपये से तौलती हो । कौन नहीं जानता, वेश्या सब धन-सम्मान लूट कर राजा को रंक बना देती है । पर तुम ने

वेइया

इतना उलट फेर किया ही क्यों ? यदि तुम साफ़ कह देतीं, मुझे तुम्हारी दौलत चाहिए तो क्या मैं न देता ? वह तो तुम्हारी ही है ।

मोती : [आँखों में आँसू भर आते हैं ।] मैं तुम्हारी दौलत नहीं चाहती ।

निरंजन : तो ?

मोती : माँ चाहती हैं ।

निरंजन : तो चलो, मैं तुम्हारी माँ के नाम सब जायदाद लिख देता हूँ । तुम्हें मेरी ओर से छुट्टी है । मैं इसके बदले मैं तुम से कुछ नहीं माँगता । तुम यदि याद ही रख सको तो काफी है—हाँ मोती, इतना ही काफी है । तुम देख लेना, मैं फिर भी तुम्हारी मूर्ति का पुजारी बना रहूँगा ! यद्यपि मैं जानता हूँ, इसके बाद मुझ पर इस घर के दरवाजे बन्द हो जाएँगे, मैं तुम्हारी सूरत तक को तरस जाऊँगा, पर मेरे हृदय में तुम्हारी जो मूर्ति अंकित है उसकी पूजा से तो मुझे कोई न रोक सकेगा ?

मोती : [भिसकते हुए] निरंजन जाने दो, इस तरह नहीं होगा ।

निरंजन : तो किस तरह होगा ?

मोती : तुम्हें दौलत माँ को देनी होगी । वह उसकी भूखी हैं, मुहब्बत मुझे देनी होगी, मैं उसकी प्यासी हूँ ।

निरंजन : मोती !

मोती : भगवान साक्षी !

निरंजन : तो आओ ।

मोती : मैं न जाऊँगी । तुम जाओ, माँ के नाम कागज़ लिख दो और मेरे लिये नीचे बाज़ार से एक सीधी सादी साड़ी ले आना । इन वस्त्रों से, इन आभूषणों से पाप की गन्ध आती है । मैं ये सब यहीं छोड़ जाऊँगी ।

निरंजन : बहुत अच्छा

[तेज़ी से निरंजन चला जाता है ।]

तूफ़ान से पहले

मोती : [दीर्घ निश्वास छोड़ती है ।] तुम मुझे कितना ग़लत समझते हो, निरंजन । तुम्हारा संदेह ठीक है, मैं वेदया हूँ पर तुम देख लोगे कि मोती सच्ची है और तुम्हारा संदेह ग़लत ।

[गुलशन और जवाहर प्रवेश करती हैं]

गुलशन : एक लाख की जायदाद बाई, मोतीने उसे किस तरह बस में कर रखा है ।

जवाहर : [अपने ध्यानमें सामने दीवार की ओर देखते हुए जैसे अपने आप] मैं उसकी जायदाद नहीं चाहती ।

गुलशन : आपने वकील और अर्जीनवीस बुला रखा था, आपको किस तरह मालूम था कि वह आज ही सब कुछ लिखनेको तैयार हो जाएगा ।

जवाहर : मैंने मोतीसे कहा था और मैं जानती थी मोतीका एक संकेत काफी होगा [जैसे अपने आप] मोती, मोती तुम्हारे संकेत मात्र पर जायदादें न्योछावर कर दी जाती हैं और मेरे प्यारको भी ठुकरा दिया जाता है ।

[कौच पर बैठ जाती है]

गुलशन कुछ गाओ, कोई ऐसा गीत गाओ जो मनसे सब चिंताएँ दूर कर दे, सारे दुख भूला दे ।

गुलशन : [चकित] चिंताएँ, दुख,

जवाहर : [बेजारीसे] और तुम ही जानती मेरे हृदयमें कौनसा तूफ़ान उठ रहा कौनसी हलचल मची हुई है । गाओ, तुम गाओ । [अपने ध्यान में] निरंजन यह कुर्बानी मेरे लिए नहीं मोती के लिए कर रहा है ! मोती, मोती तुम्हारा कैसा भाग्य है मुझे तुमसे ईर्ष्या होती है [गुलशनसे] गुलशन गाओ, कुछ गाओ

[गुलशन गाती है]

आ इस दुनियाके ऊपर, अभिनय संसार बमाएँ
जिसमें दुख इस दुनियाके, हमको न सताने पाएँ

वेदया

ऐसा संसार कि जिसमें दिन मद होशी में बीतें
इस दुनिया के दुःखोको, जिस दुनियामें हम जीतें
उठ आलस छोड़ सजनि अब, दिन योंही बीत चलेगा
हम ही छोड़ें तो छोड़े, कब दुख हमको छोड़ेगा

जवाहर : [दीर्घ निश्वास छोड़ती है] चलो गुलशन

[दोनों धीरे धीरे जाती हैं कुछ क्षण बाद एक कागज़
हाथमें लिये निरंजन प्रवेश करता है]

निरंजन : [शून्यही में] लो यह कागज़ है मोती, तुम इसे ले लो और देख लो
तुम्हारे प्रेम का भिखारी दौलत को हेय समझता है । मोती तुम व्यापार
करती हों, तुम समझती हो मैं दौलत की परवाह करता हूँ, तुम्हारे
बिना दौलत की क्या हस्ती है और तुम साथ हो तो फिर दौलत की क्या
परवाह है ।

[जल्दी जल्दी कमरे में घूमता है । दायी ओर के दरवाजे से
मोती का प्रवेश]

मोती : तुम आ गए निरंजन ।

निरंजन : [चौंक कर] हाँ यह लो कागज़, अपनी माँ के पास ले जाओ । इस
कागज़ द्वारा मैंने सारी जायदाद उसके नाम कर दी है । इसकी रजिस्ट्री
का प्रबन्ध कर दिया है, वकील यह काम भली भौति सर अंजाम
देगा ।

मोती : [लम्बी साँस लेकर] तुम ने मुझे एक बड़े बोझ के नीचे दबने से
बचा लिया [कागज़ लेती है] और वह साड़ी लाए ? मैं इसी क्षण तुम्हारे
साथ चलूँगी ।

निरंजन : [मोती की आँखों में आँखें डालकर देखता है] अभी इस की ज़रूरत
है मोती ?

मोती : उसके बिना यह कागज़ नहीं चाहिए ।

तूफ़ान से पहले

निरंजन : मैं वह नहीं लाया ।

मोती : तो क्या तुम चाहते हो कि मैं वही सब कुछ करूँ जो मां चाहती है, मैं अपने इस शरीर को जिसे तुमने प्यार भरी निगाहों से देखा है विप्रयासक्त कामियों की दया पर छोड़ दूँ, मैं मुस्कराऊँ क्यों कि उनकी प्रसन्नता इसी में है, नाज़ नख़रे करूँ क्यों कि वह यह चाहते हैं । चाहे मेरा दिल रोता हो, खून के आँसू बहाता हो ।

निरंजन : [निर्निमेष उसकी ओर देखता है]

[मोती की आँखों में आँसू भर आते हैं]

मोती : निरंजन मुझे यह नहीं चाहिए । इस की आवश्यकता मां को है । मुझे तुम्हारी मुहब्बत चाहिए, और यदि वह तुम मुझे नहीं देते तो यह भी ले जाओ, मैं मां का कहा मान लूँगी, तुम्हें तंग न करूँगी ।

निरंजन : परमात्मा जानता है मोती, मैं जायदाद की तनिक भी परवाह नहीं करता, मैं तो यह चाहता हूँ, कि तुम्हें कष्ट न हो । तुम्हारी माँ मेरी जायदाद चाहती है वह ले ले, पर तुम मुझ ग़रीब के साथ मुसीबत में क्यों पड़ो ?

मोती : तुम मुझे ले जाना नहीं चाहते—

निरंजन : तुम चलेगी ?

मोती : अभी इसी क्षण ।

निरंजन : निर्धनता, गुमनामी, मुसीबत का स्वागत करना होगा ।

मोती : मैं तैयार हूँ ।

निरंजन : [तेज़ी से दरवाज़े की ओर जाता हुआ] तो मैं अभी आया ।

मोती : [आवाज़ देती है] गुलशन गुलशन !

[कमरे में घूमती है, कुछ क्षण बाद गुलशन आती है]

मोती : मां को बुलाओ !

वेदया

[गुलशन जाती है]

मोती : [अपने आप] मां तुम निरंजन की दौलत चाहती थीं । लो मैं तुम्हें देती हूँ अब वह कंगाल है गरीब है, मिखारी है । तुम्हारी इच्छा पूरी हो । हाँ मैं उसे अपने दरवाज़े से धतकार न सकूंगी, लेकिन वह यहाँ आएगा भी नहीं ।

[जवाहर आती है]

जवाहर : मोती !

मोती : [चौंक कर] मां !

जवाहर : निरंजन कहाँ गया ?

मोती : [सुनी अनसुनी एक करके] तुमने यही कहा था न मां उसकी दौलत छीन लो, उसके पंख मरोड़ लो, उसे दाने दाने के लिए मोहताज बना दो—

जवाहर : [प्रसन्न होकर] तो क्या सब कुछ तय हो गया ?

मोती : तुम यही कहती थीं न, कि उसे धन सम्पत्ति का दर्प है, यह सब उससे ले ले !

जवाहर : क्या सब कुछ लिखा गया ?

मोती : हाँ, यह लो कागज़, अब निरंजन कंगाल हैं, गरीब हैं मोहताज हैं । तुम्हारे अपमान का बदला ले लिया गया ।

[जवाहर प्रसन्न होकर मोती की बलाएँ लेती है मोती की आँखें सजल हो जाती हैं और वह पसीना पोंछने के बहाने आँसू पोंछ लेती है ओर दरवाज़े की ओर बढ़ती है ।]

मोती—[जाते जाते गुलशनसे] गुलशन जाओ, यदि निरंजन आएँ तो जो वह लाएँ, मेरे कमरेमें पहुँचा देना !

[जवाहर कागज़ देखती है, उसकी आकृति पर उल्लास की एक लहर दौड़ जाती है और वह कौच पर बैठ जाती है]

तूफ़ान से पहले

जवाहर : [जैसे अपने आप] निरंजन अब तुम मेरे बस में हो, मैं चाहूँ तो तुम्हें फिर से लखपति बना सकती हूँ चाहूँ तो फिर से दर दर की भीख मंगा सकती हूँ । मैं क्या चाहूँगी, यह तुम पर निर्भर है । जाऊँ आज फिर अपने भाग्यकी परीक्षा कर देखूँ । अभी शायद निरंजन आता हो । आज मैं अपनी सब से अच्छी साड़ी पहनूँगी । यदि निरंजन ने मेरी ओर हमदर्दी की आँखों से देखा तो वह फिर से घनाधीश हो जायगा, मैं अपना भी सब कुछ उसे दे दूँगी और यदि उसकी उपेक्षा में अन्तर न आया तो मैं उसे अपने मकानसे बाहर निकलवा दूँगी धक्के दे कर बाहर निकलवा दूँगी ।

[तेज़ी से बाये दरवाज़े से निकल जाती है निरंजन कपड़ों का लिफ़ाफ़ा लिए दाख़िल होता है । उसके पीछे गुलशन आती है]

गुलशन : बाबूजी, बाबूजी !

[निरंजन मुड़ता है]

निरंजन : [उसे लिफ़ाफ़ा देता हुआ] यह उन्हें दे दो ।

[गुलशन लिफ़ाफ़ा लिए जाती है । निरंजन कमरे में घूमता है, सीटी बजाता है गुन गुनाता—क्यों इन आँखों के पीछे—और फिर सीटी बजाता है]

[मोती प्रवेश करती है, सीधी सादी साड़ी और बलौज़ पहने हुए]

मोती : चलो !

निरंजन : मोती !

[मोती प्रश्नसूचक दृष्टि से उसकी ओर देखती हैं]

निरंजन : विश्वास नहीं होता !

मोती : किस बातका विश्वास नहीं होता ?

निरंजन : मेरे भाग्य का नक्षत्र इतना बलवान है ।

वेदिया

मोती : मेरे भाग्य का नक्षत्र उससे अधिक बलवान है ।

[दोनों चलते हैं, निरंजन रुकता है]

निरंजन : मोती !

मोती : निरंजन !

निरंजन : मोती वहाँ सुख आराम न होगा, धन वैभव न होगा ।

मोती : न हो, वहाँ तुम तो होगे, तुम्हारा प्यार तो होगा, सीधा सादा जीवन तो होगा ।

निरंजन : तो चलो—

[दोनों दरवाज़ों की ओर बढ़ते हैं, गुलशन प्रवेश करती है]

गुलशन : बाईं कहाँ चलीं ?

मोती : कहीं नहीं माँ आएँ तो उन्हें यह लिफाफा देना—

[चले जाते हैं बायें दरवाज़े से सुन्दर वस्त्रों से आवृत्त लेकिन
बबराई हुई जवाहरका प्रवेश]

जवाहर : गुलशन, गुलशन, मोती कहाँ गईं, यह उसके कमरे में गहने कपड़े
क्यों बिखरे पड़े हैं ।

गुलशन : सीधे सादे कपड़े पहन कर निरंजन बाबूके साथ चली गई हैं और
आपके लिए यह चिठ्ठी दे गई हैं ।

[पत्र लेकर जवाहर जल्दी जल्दी पढ़ती है]

प्यारी मां तुम्हें दौलत चाहिए थी, वह तुम्हें मिल गई, मैं मुहब्बत
चाहती थी, वह मैंने ले ली । इसलिए विदा ।

मोती

[जवाहर कौच के कोने में घँस जाती है और असह्य वेदना से
पत्र के टुकड़े टुकड़े कर देती है]

तूफान से पहले

जवाहर : कौन कहता है मैं दौलत चाहती थी, मैं तो निरंजन को उसकी दौलत लौटाने आई थी, दौलत ! मैं दौलत नहीं चाहती ।

[जेबसे जायदादका कागज निकाल कर पुर्जे पुर्जे कर के हवामें उड़ा देती है]

—[शून्य में देखते हुए] मोती मैं दौलत न चाहती थी, मैं भी मुहब्बत चाहती थी, लेकिन मुहब्बत अब मेरे भाग्य में कहाँ ? [दीर्घ निश्वास छोड़ती है] अब वह तुम्हारे भाग्य में है । मुरझाए हुए फूल को कौन गले लगाएगा, सूखे गुलाब को कौन हार में पिरोना चाहेगा ?

[ठंडी सांस भरती है, फिर उसी तरह पाँव पसार लेती है, सिर पीछे दीवारके साथ जा लगता है, बायाँ हाथ कोच पर आ जाता है और दायाँ नीचे लटक जाता है ।]

[पर्दा गिरता है ।]

तौलिये

पात्र :

बसन्त
मधु
सुरो

चिन्ती
मङ्गला

स्थान :

नयी दिल्ली

[पर्दा बसन्त के ड्राइंगरूम में उठता है। ड्राइंगरूम न बहुत बड़ा है, न छोटा। बहुत सजा हुआ भी नहीं है। बसन्त एक अढ़ाई सौ मासिक पाता है। पर नई दिल्ली के अढ़ाई सौ..... लेकिन वह फर्म का मैनेजर है, इसलिए टेलीफोन लगा है, इसलिए कमरा भी सजा है--बाई दीवार के साथ एक मेज़ लगी है, उस पर कागज़-पत्रों के अतिरिक्त टेलीफोन रखा है।

मेज़ के इधर एक दरवाज़ा है, जो अन्दर कमरे में जाता है। मेज़ के उस ओर कोने में एक अँगीठी है, किन्तु आग शायद इसमें नहीं जलती, क्योंकि अँगीठी का कपड़ा अत्यन्त सुन्दर है, उस पर सजावट की चीज़ें भी रखी हुई हैं--वैसी ही जैसी मध्यवर्गीय घरों में होती हैं--लेकिन वे बिखरी नहीं हैं और करीने से लगी हुई हैं। दो पीतल के गुलदान दूसरी वस्तुओं के अतिरिक्त अँगीठी के दोनों कोनों पर रखे हुए हैं। इसी अँगीठी के कपड़े की लम्बी झालर को छूता हुआ एक रेडियो सेट, नीचे एक छोटी-सी मेज़ पर रखा है, जिसके मेज़पोश का डिज़ाइन अँगीठी के कपड़े से मैच करता है और मधु की सुरुचि का पता देता है।

अँगीठी के ऊपर दीवार पर एक कैलेंडर लटक रहा है--जिससे कि मेज़ पर बैठे हुए व्यक्ति के ऐन सामने पड़े। कैलेंडर को एक नज़र देखने से मालूम होता है कि नवम्बर का महीना है। अँगीठी के बराबर एक दरवाज़ा है जो रसोई में जाता है।

इस दरवाज़े से ज़रा हटकर सामने की दीवार के साथ एक बेंत के कौच का सेट है। इसके आगे एक तिपाई पड़ी है। सेट की गद्दियाँ सुन्दर और सुरुचिपूर्ण हैं और तिपाई का कवर अँगीठी के कपड़े से मैच करता है।

तूफ़ान से पहले

सामने, दीवार के बाईं ओर, कौच से ज़रा हटकर एक दरवाज़ा है जो स्नानगृह को जाता है।

बाईं दीवार के साथ शृङ्गार की मेज़ लगी है जिससे वसन्त और मधु दोनों अपने टायलेट का काम ले लेते हैं। इसके ऊपर खूंटियों पर तौलियाएँ टंगी हैं। मेज़ के दोनों ओर एक-दो कुर्सियाँ पड़ी हैं। दाईं दीवार में इधर को एक दरवाज़ा है जो बाहर जाता है।

पर्दा उठते समय हम वसन्त को शृङ्गार की मेज़ पर बैठे हजामत बनाते देखते हैं। वास्तव में वह हजामत बना चुका है और तौलिया से मुँह पोंछ रहा है। तभी रसोई के दरवाजे से स्वेटर बुनती हुई मधु प्रवेश करती है।]

मधु : यह फिर आपने मदन का तौलिया उठा लिया। मैं कहती हूँ आप...

वसन्त : [मुँह पोंछते-पोंछते रुककर] ओह ! यह कम्बख्त तौलिया ! मुझे ध्यान ही नहीं रहता। बात यह है [हँसता है] कि मदन के तौलियाँ छोटे हैं और हजामत,.....।

मधु : [चिढ़कर] और हजामत के तौलिया जैसे हैं। जी ! ज़रा आँख खोलकर देखिए हजामत के तौलिया कितने रंगीन हैं बीसियों तो धारिवाँ पड़ी हुई हैं उनमें और मदन के कितने सादे और.....।

वसन्त : लेकिन रोएँदार तो....।

मधु : [व्यंग्य से] दोनों हैं। जी ! आँखें बन्द करके आदमी दोनों का अन्तर बता सकता है। मैं कहती हूँ....।

वसन्त : [निरुत्तर होकर] वास्तव में मेरा ध्यान दूसरी ओर था। लाओ, मुझे हजामत का तौलिया दे दो। कहाँ है ? मुझे दिखाई ही नहीं दिया।

मधु : [खूँटी पर टँगा हुआ तौलिया उठाकर] यह तो टँगा है सामने फिर भी.....

वसन्त : मैंने ऐनक उतार रखा है और ऐनक के बिना तुम जानती हो हमारी दुनिया.....।

तौलिये

[खिसियानी हँसी हँसता है ।]

मधु : जी, आपकी दुनिया ! जाने आर किस दुनिया में रहते हैं । अब तो ऐनक नहीं । ऐनक हो तो कौन-सा आपको कुछ दिखाई देता है ।

[मुँह फुला धम से कौन में धँस जाती है । और चुपचाप स्वेटर बुनने लगती है । वसन्त हजामत का सामान रखता है फिर अचानक उसकी ओर देखकर ।]

वसन्त : यह तुमने फिर मुँह फुला लिया । नाराज़ हो गई हो ?

मधु : [व्यंग से हँसकर] नहीं मैं नाराज़ नहीं ।

वसन्त : तुम्हारा खयाल है कि मैं इतना मूर्ख हूँ जो यह भी नहीं पहचान सकता ?

मधु : [उसी तरह हँसकर] मैं कब कहती हूँ ?

वसन्त : [सामान बैसे ही छोड़कर कुर्सीको उसकी ओर घुमाते हुए] मैंने तुमसे कितनी बार कहा है कि अपने भावों को छिपा लेने की निपुणता तुम्हें प्राप्त नहीं । तुम्हारी उपेक्षा, तुम्हारा क्रोध, तुम्हारी समस्त भावनाएँ तुम्हारी आकृति पर प्रतिबिम्बित हो जाती हैं । तुम्हें मेरी आदतें बुरी लगती हैं, पर मैंने तुम्हें अँधेरे में नहीं रखा । अपने सम्बन्ध में, अपने स्वभावके सम्बन्धमें, सब कुछ बता दिया था । मैंने अपने सब पत्ते.....।

मधु : मेज़ पर रख दिये थे । [उसी तरह व्यंग से हँसकर] मैं कब इन्कार करती हूँ ?

वसन्त—तुम्हारी यह हँसी कितनी विषैली है । इसी तरह विष घोल-घोलकर तुमने अपने स्वास्थ्य का सत्यनाश कर लिया है ।

मधु : [चुप रहती है] ।

वसन्त : मैं तुम्हें किस प्रकार विश्वास दिलाऊँ कि मैं स्वयं सफ़ाई का बड़ा भारी समर्थक हूँ ।

तूफान से पहले

मधु : [हँसती है] इसमें क्या सन्देह है ?

वसन्त : और मुझे स्वयं गन्दगी पसन्द नहीं ।

मधु : [सिर्फ हँसती है] ।

वसन्त : पर मैं तुम्हारी तरह ' अरिस्टोक्रेटिक ' [Aristocratic] वातावरण में नहीं पला और मुझे नज़ाकतें नहीं आतीं । हमारे घर में सिर्फ एक तौलिया होता था और हम छहों भाई उसे काम में लाते थे ।

मधु : आप मुझे ' अरेस्टोक्रेट ' कहकर मेरा उपहास करते हैं । मैं कब कहती हूँ, दस-दस तौलिये हों ।

वसन्त : दस और किस तरह होते हैं ? नहाने का अलग । हजामत बनाने का अलग । हाथ-मुँह पोंछने का अलग । और फिर तुम्हारे और मदन के।

मधु : [पहलू बदलकर] लेकिन मैं पूछती हूँ, इसमें दोष क्या है ? जब हम खरीद सकते हैं तो क्यों न दस-दस तौलिये रखें । कल, परमात्मा न करे, हम इस योग्य न रहें, तो मैं आपको दिखा दूँ कि किस तरह ग़रीबी में भी सफ़ाई रखी जा सकती है—तौलिये न सही, खादी के अँगोछे सही, कोई पुरानी-धुरानी पर उजली चादर या धोती के टुकड़े सही—कुछ भी रखा जा सकता है । लेकिन जिस तौलिये से किसी दूसरे ने बदन पोंछा हो, उससे किस प्रकार कोई अपना शरीर पोंछ सकता है ?

वसन्त : मैं कहता हूँ, हम छः भाई एक ही तौलिये से बदन पोंछते रहे ।

मधु : लेकिन बीमारी.....।

वसन्त : हममें से किसी को कभी कोई बीमारी नहीं हुई ।

मधु : पर चर्म-रोग.....।

वसन्त : तुम्हें और मदन को तो कोई बीमारी नहीं.....और फिर रोग इस तरह नहीं बढ़ता । रोग बढ़ता है कमज़ोरी से जब हमारे

तौलिये

शरीर में रोग से लोहा लेनेवाले लाल कीटाणु कम हो जाते हैं, तब !
चूहा सैदनशाह की बात जानती हो ?

मधु : चूहा सैदनशाह.....।

वसन्त : शिकार करने के विचार से कुछ अफसर चूहा सैदनशाह गये ।
उनमें अमेरिका के राक-फ़ैलर-ट्रस्ट के कुछ डाक्टर भी थे । लंच के समय
उन्हें पानी की आवश्यकता पड़ी । बैरे ने आकर बताया कि गाँवमें कोई
कुआँ नहीं, लोग जौहड़ का पानी पीते हैं । डॉक्टरों को विश्वास न
आया । क्योंकि जौहड़ का पानी मैला चीकट था । ऐसी कोई ही बीमारी
होगी, जिसके कीड़े उस पानी में न हों । और चूहा सैदनशाह के जाट
दृष्ट-पुष्ट, लम्बतर्बंगे....।

मधु : तो क्या आप चाहते हैं, हम जौहड़ का पानी पीना शुरू कर दें ?

[हँसती है]

वसन्त : [उठकर कमरे में घूमता हुआ] तुम इस बात पर अपनी विषाक्त हँसी
बिखेर सकती हो, [उसके सामने रुककर] लेकिन तुम्हें मालूम हो कि
अमेरिका के डाक्टर वहीं रहे । एक जाट के रक्त का उन्होंने विश्लेषण
किया । मालूम हुआ कि उसमें रोग का मुकाबला करनेवाले लालकीटाणु
रोग की मदद करनेवाले कीटाणुओं से कहीं ज्यादा हैं । तब उन्होंने
वहाँ के लोगोंकी खुराक का निरीक्षण किया । पता चला कि वे अधिकतर
दही और लस्सी का प्रयोग करते हैं और दही में बहुत-सी बिमारीयों के
कीटाणुओं को मारने की शक्ति है । बीमारी का मुकाबला इन नज़ाकतों
और नफ़ासतों से नहीं होता बल्कि शरीर में ऐसी शक्ति पैदा करने से
होता है, जो रोग के आक्रमण का प्रतिविरोध कर सके ।

[फिर घूमने लगता है]

मधु : मैंने चूहा सैदनशाह की बात सुन ली । मैले तौलियों से शरीर में लाल
कीटाणु फैलें या श्वेत मुझे इससे मतलब नहीं । मैं तो इतना जानती
हूँ कि बचपन ही से मुझे सफ़ाई पसन्द है । मामा जी.....।

तूफ़ान से पहले

वसन्त : [मेज़ के कोने का सहारा लेकर] तुमने फिर अपने मामा और मौसा की कथा छेड़ी। माना वे विलायत हो आये हैं, किन्तु इसका यह मतलब तो नहीं कि जो वे कहते हैं वह वेदवाक्य है उस दिन तुम्हारे मौसा आये थे। उन्होंने हाथ धोये तो मैंने कहीं भूले से तौलिया पेश कर दिया। [मधु के पास आकर] उन्होंने दाँत निपोर दिये [निकल उतारते हुए] “ मैं किसी दूसरे के तौलिए से हाथ नहीं पोंछता ”—और वे अपने रुमाल से हाथ पोंछने लगे। मैं पूछता हूँ अगर वे उस तौलिए से हाथ पोंछ लेते तो उन्हें कौन-सी बीमारी चिमट जाती ?

मधु : अब यह तो.....।

वसन्त : और तुम्हारे मामाजी.....[वापस जाकर फिर मेज़ पर बैठ जाता हूँ] तुम्हारे जाने के बाद एक दिन मैं उनके यहाँ गया। रात वहीं रहा। दूसरे दिन मुझे सीधे दफ़्तर आना था। कहने लगे—हजामत यहीं बना लो। मैंने कहा—मैं एक दिन छोड़कर हजामत बनाता हूँ, मुझे कोई ऐसी ज़रूरत नहीं। जब उन्होंने अनुरोध किया तो मैंने कहा—“ अच्छा, बनाये लेता हूँ ! ” तब वे एक निकृष्टसा रेज़र ले आये और कहने लगे [निकल उतारते हुए]—मैं अपने रेज़रसे किसी दूसरे का हजामत नहीं बनाने देता, इसीलिए मैंने मेहमानों के लिए दूसरा रेज़र रख छोड़ा है ”—क्रोध के मारे मेरा रक्त खौल उठा, लेकिन अपने आपको रोककर मैंने केवल इतना कहा—“ रहने दीजिए मैं घर जाकर शेव कर लूँगा। ”

मधु : मामा जी...।

वसन्त : [अपनी बात जारी रखते हुए] इस पर शायद उन्हें महसूस हुआ कि मुझे उनकी बात बुरी लगी और उन्होंने मुझे अपने ही रेज़र से हजामत बनाने पर विवश कर दिया। किन्तु मेरे हजामत बनाने के बाद मेरे ही सामने ब्लेड उन्होंने लान में फेंक दिया और नौकर से कहा कि रेज़र को Sterilise कर लाये [निकल उतारते हुए] मामा जी...।

मधु : मैं कहती हूँ, आप उनके स्वभाव से परिचित नहीं, आपको बुरा लगा। स्वच्छता की भावना भी काव्य और कला ही की भाँति...।

तौलिये

वसन्त : [आवेग में उसके पास आकर] क्यों काव्य और कला को अपनी इस घृणा में धसीटती हो । तुम्हारे ऐसे वातावरण में पले हुए सब लोगों की नफ़ासत में नफ़रत की भावना काम करती है—शरीर से, गन्दगी से, जीवन से नफ़रती की !

मधु : [चुप रहती हैं]

वसन्त : और मुझे जीवन से घृणा नहीं । मुझे शरीर से भी घृणा नहीं और मैं सच कह दूँ, मुझे गन्दगी से भी घृणा नहीं ।

मधु : [हँसती हैं] तो फिर कूड़ों के ढेरों पर बैठिए !

[फिर कुर्सी पर जा बैठता है, और कुर्सी को और समीप ले आता है ।]

वसन्त : मुझे गंदगी से घृणा नहीं, किन्तु मैं गंदगी पसन्द नहीं करता—बड़ा नाजुक-सा फर्क है । यदि हमें जीवन का सामना करना है तो रोज़ गंदगी से दो-चार होना पड़ेगा, फिर इससे घृणा कैसी ? जिन ग़रिबों को तुम अपने बरामदे के फ़र्श पर भी पाँव न रखने दो, मैं उनके पास घंटों बैठ सकता हूँ ।

मधु : [हँसती हैं]

वसन्त : और मैंने ऐसे गंदे इलाकों में जीवन के निरन्तर कई वर्ष बिताये हैं, जहाँ तुम्हारी स्वच्छता की सनक तुम्हें गुज़रने तक न दे । समझीं !

मधु : [वहीं बैठे और वैसे ही स्वेटर बुनते हुए] पर अब तो आप विपन्न नहीं । अब तो आप गंदे इलाकों में नहीं रहते । विपन्नता की विवशता को मैं समझ सकती हूँ किन्तु गंदेपन का स्वभाव मेरी समझ से दूर की वस्तु है ।

वसन्त : तो तुम्हारे विचार में मैं स्वभाव से गंदा हूँ ।

मधु : [उसी विपैली हँसी के साथ] मैं कब कहती हूँ ।

तूफान से पहले

वसन्त : [खड़ा हो जाता है] ऐसे दिन मुझ पर आये हैं, जब एक बनियाइन पहने मुझे कई दिन गुज़र जाते थे। उसे धोने तक का अवकाश न मिलता था और अब मैं दिन में दो दो बार बनियाइन बदल लेता हूँ। अगर यह गंदेपनकी आदत है तो...।

मधु : [उसी हँसी के साथ] मैं कब कहती हूँ ?

वसन्त : स्वच्छता बुरी नहीं, पर तुम तो हर चीज़ को सनक की हद तक पहुँचा देती हो, और सनक से मुझे चिढ़ है। [फिर कमरे में घूमने लगता है] बनियाइनों और तौलियों की कैद मैंने मान ली, किन्तु यदि मैं गलती से बनियाइन न बदल पाऊँ, या गलत तौलिया ले लूँ तो इसका यह मतलब तो नहीं कि मैं स्वभाव से गंदा हूँ और मेरे इस स्वभाव पर तुम्हें मुँह फुलाकर बैठ जाना या अपनी विपैली हँसी बिलेरना चाहिए !

मधु : [चुप रहती है]।

वसन्त : [रेडियो के पास से] तुमने अपने आपको इन मिथ्या बन्धनों में इतना जकड़ लिया है कि मेरा ज़रा सा खुलापन भी तुम्हें अलरता है। अपने सिद्धान्तों को तुमने सनक की हद तक पहुँचा दिया है। ऊषी और निम्मो.....।

मधु : [बुनना छोड़ देती है] आगे फिर ऊषी और निम्मो की बात चलाई। ऊषी और निम्मो.....

वसन्त : [हँसते हुए] कल मिल गई बाज़ार में। मैंने पूछा—निम्मो आई नहीं तुम इतने दिनों से। कहने लगीं—हमको चची से डर लगता है।

(हँसता है)

मधु : [उसी विपैली हँसी के साथ] मैं उन्हें खा जो जाती हूँ।

वसन्त : [तिपार के पास से] स्वाओगी तो तुम क्या, पर वे बच्चियाँ हैं...

मधु : बच्चियाँ ! [व्यंग्य से हँसती है]।

तौलिये

वसन्त : [उसके व्यंग की सुना-अनसुना करके तिरपाई पर बैठते हुए] हँसना उनका स्वभाव है। वे हँसेंगी तो बेबात की बात पर हँसेंगी और तुम्हारा ऐटीकेट—बस दबे-दबे घुटे घुटे फिरो—ऊँह ! [बेज़री से सिर हिलाकर उठता है] जो आदमी जी भर खा-पी नहीं सकता। हँस हँसा नहीं सकता, वह जीवन में कर ही क्या सकता है। चिन्ताओं और आपत्तियों के बन्धन ही क्या कम हैं जो जीवन को शिष्टाचार की बेड़ियों से जकड़ दिया जाये—यह न करो, वह न करो। ऐसे न बोलो, वैसे न बोलो—इन आदेशों का कहीं अन्त भी है।

मधु : [चुप रहती है]।

वसन्त : और फिर तुम्हारे इस शिष्टाचार में वह स्निग्धता कहाँ है ? तुम्हारे आने से पहले मैं, देव और नाययण एक ही लिहाफ में बैठ जाते थे। ज़रा कल्पना तो करो—सर्दियों की सुबह या शाम, एक ही चारपाई पर, एक ही रज़ाई घुटनों पर ओढ़े, चार-पाँच मित्र बैठे हैं। गप्पें चल रही हैं। सुख-दुःख की बातें हो रही हैं। वहीं चाय आ जाती है। साथ-साथ बातें होती हैं, साथ-साथ चुस्कियाँ लगती हैं—इस कल्पना में कितना आनन्द है, कितनी स्निग्धता है। अब मित्र आते हैं। अलग-अलग कुर्तियों पर बैठ जाते हैं। एक दूसरे पर बोझ मालूम होता है। [जोश से] चिड़िया तक तो फटकने नहीं देतीं तुम बिस्तर के पास। मैं तो इस तकल्लुफ में घुटा जाता हूँ।

[जाकर कुर्सी पर बैठ जाता है और हजामतका सामान ठीक से रखने लगता है।]

मधु : मैं तकल्लुफ स्वयं पसंद नहीं करती। पर जब दूसरों को सफ़ाई का कुछ भी खयाल न हो तो विवश हो इससे काम लेना पड़ता है। आपही बताइए—कितने लोग हैं, जिन्हें सफ़ाई की आदत है ? कितने हैं जो हमारी तरह पाँव धोकर रज़ाई में बैठते हैं ?

वसन्त : [वहीं से] पाँव धोने की मुसीबत रज़ाई में बैठने का लुफ़ ही किर-किरा कर देती है।

तूफान से पहले

मधु : कुत्ता भी बैठता है तो दुम हिलाकर बैठता है । मनुष्य स्वभाव ही से स्वच्छता का प्रेमी है । मैं गंदे लोगों से घृणा करती हूँ ।

[फिर स्वेटर बुनने लगती है ।]

वसन्त : [मुड़कर] घृणा—यही तो मैं कहता हूँ । तुम्हें मुझसे घृणा है, मेरे स्वभाव से घृणा है तुम्हारा वातावरण मेरे वातावरण से घृणा करता है ।

मधु : [उसी विषैली हँसी के साथ] यह आप कह सकते हैं ।

वसन्त : तुम्हें मेरी हर एक बात से घृणा है—मेरे खाने-पीने से, उठने-बैठने से, हँसने-बोलने से—मैं जब हँसता हूँ, सीना फुलाकर हँसता हूँ और इसीलिए ऊपी और निम्मो.....

मधु : [स्वेटर को फेंककर] आपने फिर ऊपी और निम्मो की कथा छेड़ी । मुझे हँसना बुरा नहीं लगता । पर समय-कुसमय का भी ध्यान होना चाहिए । उस दिन पार्टी में आते ही ऊपी ने मेरे कान पर चुटकी ले ली और निम्मो ने मेरी आँखें बन्द कर ली । कोई समय था उस तरह हँसी-मज़ाक का । मुझे हँसी मज़ाक से घृणा नहीं, अशिष्टता से घृणा है ।

वसन्त : ऊपी.....

मधु : परले सिरे की अशिष्ट और असभ्य लड़की है । मदन की वर्षगांठ के दिन वे सब आये थे । निम्मो इतनी चंचल है, पर वह तो बैठ गई एक ओर, यह नवाबज़ादी सेंडल समेत आ बैठी मेरे सामने टाँगें पसारे और उसके गंदे सेंडल—मेरी साड़ी के त्रिलकुल समीप आ गये । आप इस अशिष्टता को शौक से पसन्द करें मैं तो इसे कदापि पसन्द नहीं कर सकती । जिसे बैठने, उठने, बोलने का सलीका नहीं, वह मनुष्य क्या पशु है ।

वसन्त : [गरजकर] पशु ! तो तुम मुझे पशु समझती हो ? तुम मनुष्य की प्राकृतिक भावनाओं को बाँधकर रखना चाहती हो कठिन सिद्धान्तों की बेड़ियों में । ताकि उसकी रूढ़ि ही मर जाये । मुझे यह सब पसन्द नहीं

तौलिये

और इसलिए तुम मुझे घृणा करती हो। तुम्हारी इस विषाक्त हँसी में, मैं जानता हूँ, कितनी घृणा छिपी है और मुझे डर है कि किसी दिन मैं सचमुच पशु न बन जाऊँ। अभी मेरा जी चाहता था कि इस जलील से तौलिये को उठाकर बाहर फेंक दूँ और.....और....मेरा जी चाहता करता है कि मैं तुम्हारी इस हँसी का गला घोट दूँ। घृणा—तुम मेरी हर बात से घृणा करती हो—मुझे पशु समझती हो !

मधु : [स्वेटर उठाते हुए भरे हुए गले से] आप नाटक हर बात को अपनी ओर ले जाते हैं। अपनी कल्पना से मेरे दिल में वे बातें देखते हैं, जो मैं स्वप्न में भी नहीं सोचती। मुझे आपसे घृणा है या नहीं, इसे मैं ही जानती हूँ; पर आपको मुझसे ज़रूर घृणा है। आपने मुझसे शादी कर ली, मैं जानती हूँ। क्यों कर ली, यह भी जानती हूँ। लेकिन विवाह के लिए आपका तैयार हो जाना, यह नहीं बताता कि आपको मुझसे नफ़रत नहीं। इसका क्रोध चाहे अब आप मेरी सफ़ाई पर निकालें, चाहे मेरी पोशाक या मेरे स्वभाव पर !

वसन्त : तुम.....

मधु : मेरा ख़याल था, मैं आपको सुख पहुँचा सकूँगी। आपके अव्यवस्थित जीवन को व्यवस्था सिखा दूँगी, किन्तु मैं देखती हूँ कि मेरे समस्त प्रयास विफल हैं.....आपको इस गंदगी, इस अव्यवस्था में सुख मिलता है। आपको मेरी व्यवस्था, मेरी सफ़ाई बुरी लगती है। मैं आपकी दुनिया में न रहूँगी। मैं आज ही चली जाऊँगी।

[उठ खड़ी होती है—टेलीफोन की घंटी बजती है। वसन्त जल्दी से जाकर चोंगा उठाता है।]

वसन्त : हेलो, हेलो, जी, जी !

मधु : [नौकरानी को आवाज देते हुए] मंगला !

मंगला : [स्नानगृह की ओर के दरवाजे से आती है] जी बीबी जी !

तूफ़ान से पहले

मधु : सेग बिस्तर तैयार कर और मेरा ट्रंक इस कमरे में ले आ-।

मंगला : बीबी जी आप.....

मधु : मैं जो कहती हूँ उठा ला ।

[मंगला चली जाती है । वसन्त “ जी, जी बहुत अच्छा ! ”
कहते हुए वॉग रख देता है और हँसता हुआ आता है]

वसन्त : मैं कहता हूँ तुम अपना सामान बाँधने की सोच रही हो, पहले मेरा सामान तो ठीक कर दो । मुझे पड़ली गाड़ी से बनारस जाना है । अभी साहब ने आदेश दिया है । अपना सामान बाद में बाँधना ।

[हँसता है ।]

[पर्दा गिरता है]

कुछ क्षण बाद पर्दा फिर उठता है । कमरा वही है । सामान भी वही है, सिर्फ़ इतना अन्तर है कि जहाँ मेज़ थी, वहाँ एक पलंग बिछा है । और टेलीफोन उसके सिरहाने एक तिपाई पर रखा है । मेज़, ड्रेसिंग टेबुल की जगह चला गया है । और शृङ्गार की मेज़, अपनी कुर्सी के साथ दायें कोने को सरक गई है ।

पलंग पर मधु लिहाफ़ घुटनों पर लिये दीवार के सहारे अन्यमनस्क-सी आधी बैठी आधी लेटी है ।

कुछ क्षण बाद वह कैलेंडर की ओर देखती है । उसकी दृष्टिका अनुसरण करते ही मालूम होता है कि जनवरी का महीना है और नया साल चढ़ गया है । जिसका मतलब यह है कि मधु को हम दो महीने बाद देख रहे हैं ।

बाहर का दरवाज़ा खुला है और तीखी हवा अन्दर आ रही है । लिहाफ़ को कंधों तक खींचते हुए मधु नौकरानी को आवाज़ देती है ।—“ मंगला, मंगला ! ”

तौलिये

लेकिन आवाज़ इतनी हलकी है कि शायद मंगला तक नहीं जाती। मधु रज़ाई लेकर लेट-सी जाती है। कुछ क्षण बाद मंगला स्वयं ही आती है]

मंगला : बीबी जी, यह आप उदास-उदास क्यों हैं ?

मधु : [लेटे-लेटे ज़रा सिर उठाकर] मंगला यह किवाड़ बन्द कर दो बर्फ़ीली हवा अंदर आ रही है ।

मंगला : [किवाड़ बन्द करते हुए] मेरी बात का उत्तर नहीं दिया आपने बीबी जी ?

मधु : योही कुछ तबीअत उदास है मंगला !

मंगला : कोई पत्र आया बाबू जी का ?

मधु : आया था। शायद आज-कल में आ जायें !

मंगला : तो फिर.....

मधु : [विषाद से हँसकर] तबीअत कुछ भारी-भारी-सी है। शायद सर्दी के कारण... ..

[दरवाज़े पर दस्तक होती है।]

—[ज़रा उठकर] कौन ?

सुरो : [बाहर से] दरवाज़ा तो खोलो ।

मधु : [बैठकर] मंगला, ज़रा किवाड़ खोलना ।

[मंगला दरवाज़ा खोलती है सुरो और चिन्ती आती हैं।]

मधु : [रज़ाई पर करके] अरे सुरो, चिन्ती, तुम यहाँ कैसे ?

सुरो : आज ही सबरे यहाँ उतरी हैं ।

चिन्ती : माता जी प्रयाग जा रही थीं। सरिता बहिन का खयाल था कि दिल्ली भी देखते चले।

तूफान से पहले

मधु : ठहरी कहाँ हो ?

चिन्ती : कनाट पैलस में मलिक चचा जी के यहाँ। देर से उनका अनुरोध था कि दिल्ली आयें तो.....

मधु : और मुझे पत्र तक नहीं लिखा। इतने दिनों से मैं कह रही थी कि दिल्ली आओ तो.....

सुरो : सबसे पहले तुम्हीं से मिलने आई हैं। माता जी कहती थीं कुतुब-मीनार...।

चिन्ती : मैंने कहा कुतुबमीनार एक तरफ और मधु बहिन एक तरफ...—

[मधु कड़कड़ा लगाती है ।]

सुरो : और फिर दो घंटे से मारी-मारी फिर रही हैं तुम्हारी तलाश में ।

मधु : लेकिन पता तो मेरा...

चिन्ती : सुरो बहिन भूल गईं। इन्होंने तौंगेवाले को भैरों के मन्दिर चलने के लिए कह दिया ।

मधु : [अश्चर्य से] भैरों के मंदिर.....

चिन्ती : और तौंगेवाला ले गया सब्जी मण्डी, कहीं तीस हजारी के गिर्जे के पास ।

मधु : गिर्जे के पास.....

[ज़ोर से बहकड़ा लगाती है ।]

चिन्ती : [अपनी बात जारी रखते हुए] तब इन्हें खयाल आया कि मन्दिर तो हनुमान का है। फिर नहीं दिल्ली वापस आईं ।

[मधु फिर ज़ोर से हँसती है ।]

सुरो : और तब पता चला कि हम लोग तो योही परेशान होते रहे। घर तो तुम्हारा पास ही था ।

तौलिये

मधु : तुम लोग भी, मैं कहती हूँ.....

[ज़ोर से हँस पड़ती है ।]

सुरो : यह इतना हँसना तुम कहाँ से सीख गई। तुम तो थो जन्म की सिड़ी...

चिन्ती : भाई साहब ने सिखा दिया इतने ज़ोर के कहकहे लगाना ? कहाँ हैं वे ?

मधु : बनारस गए हुए हैं, दो महीने से। वहाँ के फ़र्म का मैनेजर बीमार पड़ गया था। शायद आज-कल में आ जायँ।

चिन्ती : अच्छे तो हैं ?

मधु : अच्छे हैं। मौज में हैं। लेकिन तुम खड़ी क्यों हो ? इधर आ जाओ बिस्तर पर [नौकरानी की आवाज़ देती है] मंगला, मंगला ?

[सुरो और चिन्ती कुर्सियों पर बैठने लगती हैं ।]

मधु : अरे कुर्सियाँ छोड़ो। बस चली आओ इधर। पलंग पर बैठते हैं लिहाफ़ लेकर—

सुरो : लेकिन मेरे पाँव [हँसकर] और मैं धो नहीं सकती इन्हें।

मधु : अरे क्या हुआ है तुम्हारे पाँवों को। जुराबें तो पहन रखी हैं तुमने ?

चिन्ती : पर तुम्हारा बिस्तर ?

मधु : कुछ नहीं होता बिस्तर को। मेरे बिस्तर का खयाल छोड़ो। बस चली आओ इधर। यह किवाड़ बन्द कर दो। बर्फ़ सी हवा अन्दर आ रही है।

[मंगला आती है]

मंगला : आपने आवाज़ दी थी बीबी जी।

मधु : मंगला चाय बनाकर लाओ !

तूफ़ान से पहले

[चिन्ती निवाड़ बन्द कर देती है । तीनों घुटनों पर लिहाफ़ लेकर आराम से बिस्तर पर बैठ जाती हैं]

सुरो : पुष्पा की शादी हो रही है, अगले महीने ।

मधु : [चौंकर खुशी से] लेफ़्टिनेंट वीरेंद्र के साथ ?

चिन्ती : [हँसकर] सब तुम्हारे जैसी नहीं । वह प्रेम करती रहेगी वीरेंद्र से जीवन भर, पर शादी तो उसकी प्रोफ़ेसर मुन्शीराम ही के साथ होगी ।

मधु : पर मुन्शी राम.....

सुरो : खड़े का खालसा है भई । लेफ़्टिनेंट साहब तो आते हैं कभी-कभी-वर्ष भर में एक-दो बार और प्रोफ़ेसर साहब सिर पर सवार रहते हैं आठों पहर बुरे साये की तरह ।

चिन्ती : वह लम्ब लम्बा लमड़ीक सा आदमी । जोर की हवा चले तो उड़ता चला जाय । मैं तो सोचती हूँ कि उसे पुष्पा जैसी मोटी मुट्ठो से प्रेम भी हुआ तो कैसे ?

मधु : और मैं इस बात पर हैरान हूँ कि पुष्पा उसे पसन्द ही कैसे करती है । मैं तो उसे पाँच मिनट के लिए भी सहन न कर सकूँ । चेहरे पर तो उसके नहूसत बरसती रहती है और मालूम होता है जैसे.....

चिन्ती : वर्षों स्नानगृह का मुँह न देखा हो ।

सुरो : सहन तो उसे करना ही पड़ता है । उसके पिता प्रोफ़ेसर मुन्शीराम पर बड़े प्रसन्न हैं । उन्हींने प्रोफ़ेसर साहब को पढ़ाया-लिखाया और अपने कालेज में लगाया । वीरेंद्र तो चार वर्ष बी० ए० में रहे और प्रोफ़ेसर मुन्शीराम ने रिकार्ड तोड़ा था ।

चिन्ती : अब दोनों मिलकर बच्चे पैदा करने का रिकार्ड तोड़ेंगे ।

[सब हँसती हैं—मंगला चाय की ट्रे लाती है ।]

तौलिये

मंगला : कहाँ लगाऊँ चाय बीबी जी ।

मधु : वहाँ भेज पर रख दो और एक-एक प्याला बनाकर हमें दो । यह तिपाई सरकाकर इस पर बिस्कुट रख दो ।

सुरो : [आश्चर्य से] मधु !

मधु : अरे उठकर कहाँ जाओगी । यहीं बैठी रहो । इस गर्म बिस्तर से उठकर डाइनिंग टेबुल पर जाने में आ चुका चाय का मज़ा—

चिन्ती : [उठने की प्रयास करते हुए हलके से क्रोध से] मधु

धुम : हटाओ भी । अब बैठी रहो यहीं ।

चिन्ती : [व्यंग से] तो विवाह के बाद रानी मधुमालती ने अपने सब सिद्धान्त बदल डाले हैं । अब डाइनिंग टेबुल के बदल बिस्तर पर ही चाय पीती हैं और बिस्तर पर ही खाना भी नोश फ़रमाती हैं ।

सुरो : कहाँ तो यह कि पानी का गिलास भी पीना हो तो डाइनिंग रूम की ओर भागती और कहाँ यह कि...

मधु : अरे क्या रक्खा है इस तकल्लुफ़ में । सच कहो, इस समय किसका जी चाहता है कि इस नर्म गर्म बिस्तर से उठकर डाइनिंग टेबुल पर जाये । लो बिस्कुट लो और चाय का प्याला उठाओ ! ठंडी हो रही है ।
[सब चाय के प्याले उठा लेती हैं और चाय पीते-पीते बातें करती हैं ।]

सुरो : मैं पूछती हूँ—अगर चाय बिस्तर पर गिर जायें ?

मधु : तो क्या हुआ । चादर धुलवाई जा सकती है । और फिर किसी दिन सहसा पेश आनेवाली दुर्घटना के भय से कोई अपने रोज़ के सुख आराम को तो नहीं छोड़ देता ।

सुरो : सुख आराम [व्यंग से हँसती है] तुम बिस्तर पर चाय पीने का बहुत बड़ा सुख समझती हो.....[फिर हँसती है]

तूफान से पहले

चिन्ती : और फिर सभ्यता, संस्कृति....

मधु : मानव की आधारभूत भावनाओं पर नित्य नये दिन चढ़ते चले जाने-वाले पदों का नाम ही तो संस्कृति है। सोसाइटी के एक वर्ग के लिए दूसरा वर्ग सदैव असभ्य और असंस्कृत रहेगा। फिर कहाँ तक आदमी सभ्यता और संस्कृति के पीछे भागे।

सुरो : यह तुम क्या कह रही हो ? क्या तुम चाहती हो कि इतना कुछ सीख-समझकर मनुष्य फिर पहले की भांति बर्बर बन जाये ?

मधु : नहीं बर्बर बनने की क्या ज़रूरत है ? मनुष्य सीमाओं को छूता हुआ क्यों चले। मध्य का मार्ग क्यों न अपनाये। न इतना खुले कि बर्बर दिखाई दे न इतना बँधे कि सनकी। महात्मा बुद्ध ने कहा था.....

सुरो : [हँसकर] महात्मा बुद्ध ! तुम्हें हो क्या गया है; सदियों पुराने गले-सड़े विचारों को तुम आज की सभ्यता पर लादना चाहती हो !

चिन्ती : मनुष्य हर घड़ी, हर पल प्रगति के पथ पर अग्रसर है। आज के सिद्धान्त कल काम न देंगे और कल के परसों। बर्नार्ड शा.....

मधु : [व्यंगसे हँसकर] बर्नार्ड शा—हटाओ क्या बेमजा बहस ले बैठी हो। मंगला चाय का एक-एक कप और बनाओ।

चिन्ती : बस भई अब तो हम चलेंगे। इतनी देर हो गई हमें यहाँ आये। मंगला हाथ धुला दो हमारे।

मधु : ओर भई एक-एक प्याला तो और लो।

सुरो : नहीं मधु अब चलेंगे। वहाँ सब लोग परेशान हो रहे होंगे। हमने कहाँ था, हम केवल मधु का घर देखने जा रहे हैं। एक-आध घंटे में लौट आयेंगे और यहाँ आते ही आते दो घंटे लग गये।

चिन्ती : स्नानशुद्ध किधर है। हम वहीं हाथ धो आते हैं।

तौलिया

मधु : अरे क्या धोओगे इस सर्दी में हाथ ?

सुरो : नहीं भई हाथ तो हम ज़रूर धोयेंगे । चिप-चिप कर रहे हैं ।

मधु : तो मरो [मंगला से] मंगला, इनके हाथ धुलवा दो ।

सुरो : बाथ रूम.....

मधु : अरे बाथ रूम में जाकर क्या करोगी ? इधर बरामदे ही में धो लो ।

[किवाड़ खोलकर सुरो और चिन्ती हाथ धोती हैं । मधु चुपचाप अपने प्याले की शेष चाय पीती है ।]

सुरो : [गीले हाथ लिये वापस आकर] तौलिया कहाँ है ?

मधु : तौलिया नहीं दे गई मंगला ? अच्छा वह ले लो जो खूँटी पर टँगा है ।

सुरो : [क्रोध से] मधु तुम भली-भाँति जानती हो.....

मधु : मंगला, इन्हें अन्दर से एक धुला हुआ तौलिया ला दो ।

[चिन्ती भी गीले हाथ लिये आ जाती है । मंगला तौलिया ले आती है और दोनों हाथ पोंछती हैं ।]

—मैं कहती थी, अभी कुछ देर बैठतीं !

चिन्ती : नहीं भई अब कल आने का प्रयास करेंगी ।

[हाथ पोंछकर तौलिया कुर्सी की पीठ पर रख देती हैं ।]

मधु : प्रयास नहीं । ज़रूर आना । भूलना नहीं । और खाना भी यहीं खाना ।

सुरो : हाँ, हाँ अवश्य आयेंगी ।

[मधु उठने का प्रयास करती है ।]

—अब उठने का तकल्लुफ़ न करो । बैठी रहो अपने गर्म लिहाफ़ में । दरवाजा हम बन्द किये जाते हैं । बर्फ़-सी हवा अन्दर आ रही है ।

[हँसती हुई चली जाती हैं दरवाजा बन्द किये जाती हैं ।]

मधु : मुझे एक प्याला और बना दो मंगला ।

मंगला : [प्याला बनाकर देते हुए] ये कौन थी बीबी जी ?

तूफान से पहले

मधु : मेरी सहेलियाँ थीं । कालेज में हम साथ-साथ पढ़ते थे और होस्टल में भी साथ-साथ ही रहते थे ।

[कुछ क्षण मधु चुपचाप चाय पीती है, फिर ।]

—मंगला !

मंगला : जी बीबी जी ।

मधु : मंगला, जरा मेरी ओर देखकर बता तो मंगला, क्या मैं सचमुच बदल गई हूँ ?

मंगला : [चुप रहती है ।]

मधु : [जैसे अपने आप से] मेरी सहेलियाँ कहती हैं, मैं बदल गई हूँ । पड़ोसिनें भी यही कहती हैं ! मेरी ओर जरा देखकर बता तो मंगला, क्या मैं वास्तव में बदल सकी हूँ ?

मंगला : मैं तो आठों पहर आपके पास रहती हूँ बीबी जी, मैं क्या जानूँ ?

मधु : [अपनी बात जारी रखते हुए] मेरी आँखों में देखकर बता मंगला, क्या ये बदल सकी हैं । इनमें घृणा की झलक तो नहीं ?

मंगला : [आश्चर्य से] घृणा—

मधु : मेरे व्यवहार में तकल्लुफ़ और बनावट तो नहीं ?

मंगला : [उसी आश्चर्य से] बनावट, तकल्लुफ़—

मधु : तकल्लुफ़, बनावट, नफ़रत—तीनों को मैं अपने दिलसे निकाल देना चाहती हूँ [जैसे अपने आप से] दो महीने पहले, वे इसी बात पर मुझसे लड़कर चले गये थे ।

मंगला : क्या कह रहा हूँ बीबी जी आप । बाबू जी तो.....

मधु : [शून्य में देखते हुए] उनका क्रोध अभी तक नहीं उतरा । इन द महीनों में उन्होंने मुझे एक पत्र भी नहीं लिखा ।

मंगला : एक पत्र भी नहीं लिखा, लेकिन...

मधु : [व्यंग से] “ मैं कुशल से हूँ, अपनी कुशल का पता देना ! ”
“ मैनेजर बीमार हैं ज्यों ही स्वस्थ हुआ चला आऊँगा । ” इन्हें तु

तौलिये

पत्र लिखना कहती होगी। वे मुझसे नाराज़ हैं। उनका खयाल है कि मैं उनसे घृणा करती हूँ।

मंगला : [कुछ भी समझने में असफल होते हुए]—घृणा, घृणा ?

मधु : यदि मैं बचपन ही से ऐसे वातावरण में पली हूँ जहाँ सफ़ाई और सलीके का बेहद खयाल रखा जाता है तो इसमें मेरा क्या दोष है [लगभग भरे हुए गले से] वे सफ़ाई और व्यवस्था की मेरी इच्छा को घृणा बताते हैं। मैं बहुतेरा यत्न करती हूँ कि इस सब सफ़ाई-वफ़ाई को छोड़ दूँ, इन तकल्लुफ़ात को तिलांजली दे दूँ, पर अपने इस प्रयास में कभी कभी मुझे अपने आप से घृणा होने लगती है। [लंबी साँस भर कर] बचपन से जो संस्कार मैंने पाये हैं उनसे मुक्ति पाना मेरे लिए उतना आसान नहीं। [अचानक दृढ़ता से] पर नहीं। मैं इन सब बहमों को छोड़ दूँगी। पुरानी आदतों से छुटकारा पा लूँगी। वे समझते हैं, मैं उनसे नफ़रत करती हूँ।

मंगला : आप क्या कह रही हैं बीबी जी ?

मधु : वे समझते हैं—मैं उनसे, उनके स्वभाव से, उनके वातावरण से, उनकी हर एक बात से घृणा करती हूँ। [सिसकने लगती है] मैंने इन दो महीनों में अपने आपको बदल डाला है। अपने आपको बिलकुल बदल डाला है।

[दरवाजा अचानक खुलता है और वसन्त प्रवेश करता है।]

वसन्त : हेल—लो मधु—क्या हाल—चाल है जनाव के ? [मंगला से] मंगला ताँगे से समान उतरवाओ। और [जेबसे पैसे निकालते हुए] और यह लो डेढ़ रुपया ! ताँगेवाले को दे दो।

[मंगला पैसे लेकर चली जाती है।]

वसन्त : [फिर मधु के पास आते हुए] कहो भाई क्या हाल-चाल है, यह सूरत कैसी रोनी बना रखी है। जी कुछ ख़राब है क्या ?

तूफान से पहले

मधु : [जो इस बीच में पलँग से उतर आई है — हँसने का प्रयास करते हुए] सूखा जाड़ा पड़ रहा है । जुलाम है मुझे तीन-चार दिन से ।

वसन्त : मैंने तुम्हें कितनी बार कहा है कि अपने स्वास्थ्य का ध्यान रखा करो । सेहत—सेहत—सेहत—दुनिया में जो कुछ है सेहत है । जीवन में तुम्हारी यह सफाई और सुघड़ता, ये नज़ाकतें इतना काम न देंगी, जितना सेहत । यदि यही ठीक नहीं रहती तो ये सब किस काम की और अगर ठीक है तो फिर इनकी कोई ज़रूरत नहीं । [अपने कथन की बारीकी का स्वयं ही आनन्द लेता है और फिर जैसे उसने पहली बार कमरे को अच्छी तरह देखा हो] ओरे यह कायापलट कैसी ? यह पलँग ड्राइंगरूम में कैसे आ गया । और यह ट्रे और प्याले.....।

मधु : मैंने पलँग इधर ही बिछा दिया है कि आप और आपके मित्रों को जरा भी कष्ट न हो । मजे से लिहाफ़ लेकर बैठिए । टेलीफ़ोन आपके सिरहाने रहेगा ।

वसन्त : [उल्लास से] वाह ! मैं कहता हूँ । तुम...तो, तुम...तो...बेहद अच्छी हो ।

मधु : मैं स्वयं अपनी सहेलियों के साथ इसी लिहाफ़ में बैठी रही हूँ ।

वसन्त : [आश्चर्य-मिश्रित उल्लास से] सच !

मधु : [उसकी ओर प्रशंसा की इच्छुक प्यार भरी दृष्टि से देखने हुए] और चाय भी हमने यहीं पी है ।

वसन्त : [प्रसन्नता से] व...।...ह ! मैं कहता हूँ—अब तुम जीवन का रहस्य समझ पाई हो । जीवन का भेद बाह्य तढ़क-भड़क में नहीं, अन्तर की दृढ़ता में है । यदि, यदि हमारी प्रतिरोध-शक्ति, हमारी Power of Resistance कायम है.....।

मधु : चाय भी अब आप यहीं पिया कीजिएगा, अपने नर्म गर्म बिस्तर पर !

वसन्त : [अत्यधिक उल्लास से] वाह वा वाह ! अब इसी बात पर तुम मंगला से कहो । मेरे लिए चाय का पानी रखे ।

मधु : अब तो आप नाराज़ नहीं हैं ?

तौलिये

वसन्त [आश्चर्य से] नाराज़ !

मधु : आप इतने दिनों तक मन में गुस्सा रख सकते हैं, यह मैंने स्वप्न में भी न सोचा था ।

वसन्त : [और भी आश्चर्य से] गुस्सा !

मधु : दो माहिने से आपने ढंग से पत्र तक नहीं लिखा ।

वसन्त : पर मैंने.....।

मधु : पत्र लिखे थे । जी । “ मैं कुशल से हूँ अपनी कुशल का पता देना ”—इसे पत्र लिखना कहते होंगे ।

वसन्त : [जोर से क़हाक़हा लगाता है] तो तुम इसका कारण यह समझती हो कि मैं तुमसे नाराज़ हूँ ? पगली ! तुमसे भी कभी कोई नाराज़ हो सकता है ।

मधु : पर दो पंक्तियाँ.....।

वसन्त : दो पंक्तियाँ लिखने का भी अवकाश मिल गया तुम इसी को बहुत समझो ।

मधु : अच्छा आप जाकर हाथ-मुँह धो लीजिए । मैं चाय तैयार करती हूँ ।

वसन्त : मैं कहता हूँ, तुम कितनी...तुम कितनी.....तुम कितनी अच्छी हो ।

मधु : [मुस्कराते हुए] अच्छा-अच्छा चलिए, पहले हाथ मुँह धोकर कपड़े बदलिए ।

वसन्त : यह फिर तुमने कपड़े बदलने की पख लगाई ?

मधु : क्यों कपड़े न बदलिएगा ? एक रात और एक दिन गाड़ी में सफ़र करके आये हैं । मार्ग की धूल सारे शरीर पर पड़ी हुई है । चलिए, चलिए जल्दी हाथ-मुँह धोकर कपड़े बदलिए ! मैं इतने में चाय तैयार करती हूँ [वसन्त को स्नानगृह के दरवाजे की ओर धकेल देती है, और नौकरानी को आवाज़ देती है]
मंगला, मंगला ।

मंगला : [दूसरे कमरे के दरवाजे से झाँकती है] जी बीबी जी !

मधु : सामान रखवा लिया या नहीं !

मंगला : जी बीबी जी !

तूफ़ान से पहले

मधु : यह ट्रे और प्यालियाँ उठा। पानी तो चाय का ठंडा हो गया होगा। बाबू जी उधर हाथ-मुँह धोने गये हैं। मैं और पानी रखती हूँ। इतने में यह पानी फेंककर चायदानी और प्यालियाँ अच्छी तरह धो डाल।

[मंगला ट्रे आदि उठाकर जाती है। एक चमचा गिर जाता है।]

[कुछ तीखे स्वर में] यह चमचा फिर फर्श पर गिरा दिया तूने। बीस बार कहा है कि चमचा न गिराया कर फर्श पर, चिप-चिप होने लगती है। अब ट्रे बाहर रखकर, इस जगह को गीले कपड़े से धो डाल !

वसन्त : [स्नानागृह से] अरे भई साबुन कहाँ है ?

मधु : ध्यान से देखिए। वहीं तखती पर पड़ा है।

वसन्त : [वहीं से] और तौलियाँ !

मधु : हाथ मुँह धो आइए और इधर कमरे से सूखा नया तौलिया लेकर पोंछ लीजिए।

[मंगला कपड़े का टुकड़ा भिगोकर लाती है और चुपचाप फर्श साफ करने लगती है]

—तू फर्श साफ करके चायदानी और प्यालियाँ धो डाल और मैं पानी रखती हूँ चाय का।

[रसोई दरवाजे से चली जाती है। कुछ क्षण तक मंगला चुपचाप फर्श साफ़ किये जाती है। फिर वसन्त हाथ-मुँह धोकर कुर्ते की आस्तीनें चढ़ाये, गुनगुनाता हुआ आता है—

हिंडोला कैसे झल्लूँ, मेरा जिया डोले रे।

मैं झूला कैसे झल्लूँ मेरा जिया डोले रे।

और अपने ध्यान में मग्न कुर्सी की पीठ पर पड़े हुए उस तौलिए से मुँह पोंछने लगता है जिस से सुरो और चिन्ती हाथ-मुँह पोंछकर मई हैं]

मधु : [रसोईखाने से] यह केतली कैसी बना रखी है मंगला तूने ? मनो तो मेल जमी हुई है पेंदे में [केतली हाथ में लिए आ जाती है] तुझे कभी

तौलिये

बर्तन न साफ करने आयेँगे मंगला । कितनी बार कहा है कि सफाई का ...[अचानक वसन्त को सुरोवाले तौलिये से मुँह पोंछते हुए देखकर लगभग चीखते हुए] यह सूखा नया बौलिया लिया है आपने ? मैं पूछती हूँ आप सूखे और गीले तौलिये में भी तमीज़ नहीं कर सकते । अभी तो सुरो और चित्ती चाय पी कर इस तौलिये से हाथ पोंछ कर गई हैं ।

वसन्त : [धबराकर] परन्तु नया.....

मधु : नया तौलिया उधर कमरे में टंगा है ।

वसन्त : ओह ये कम्बख्त तौलिये ! मुझे ध्यान ही नहीं रहता । वास्तव में दोनों तौलिये साफ हैं, मुझे.....

मधु : जी साफ हैं । जरा आँख खोल कर देखिए ! गीले और सूखे.....

वसन्त : मैंने ऐनक उतार रखी है और ऐनक के बिना तुम जानती हो हमारी दुनिया.....

(खिसियानी हँसी हँसता है)

मधु : जी आपकी दुनिया । जाने आप किस दुनिया में रहते हैं । अब तो ऐनक नहीं । ऐनक हो तो कौनसा आपको कुछ दिखाई देता है ।

(मुँह फुलाकर धम से कौच में धँस जाती है)

वसन्त : यह तुमने फिर मुँह लटका लिया । नाराज़ हो गई हो रहा ।

मधु : (व्यंग से हँस कर) नहीं मैं नाराज़ नहीं ।

वसन्त : (चिल्लाकर) तुम्हारा खयाल है मैं इतना मूर्ख हो जो यह भी नहीं पहचान सकता ।

(पर्दा सहसा गिर जाता है)

पक्का गाना

पात्र :

नईम
दीपक
रमेश
हमदम

रामप्रसाद
हरशाद
हुसेन गुप्फार
असगर

स्थान :

चौपाटी

समय :

संध्या

[चौपाटीके रेतीले किनारे पर एक ओर दरियाँ बिछाए दर्शनके अध्यापक प्रोफेसर नईम, ' लाईट सिंगर ' उस्ताद असगर हुसेन, तबलची गफ्फार, सारंगी नवाज़ इराशद, बंसरी बजाने वाले राम-प्रसाद, कवि हमदम, गीतिकार पं. दीपक, डायलोग-राइटर रमेश और एक-दो अन्य साथी बैठे हैं । संध्याका समय है और यद्यपि चौपाटी तट पर इतवार की-सी रौनक नहीं, फिर भी पृष्ठभूमिमें कुछेक टोलियाँ रेत पर बैठी हुईं डूबते सूरजकी छायामें समुद्रके बदलते हुए रंगोंका आनन्द लेती दिखाई देती हैं; समुद्र उतर गया है और गीले सैकत-तट पर अस्तोन्मुख सूरजकी किरणें एक अद्भुत पीला सुनहरी प्रतिबिम्ब बिखेर रही हैं, जिसमें कहीं-कहीं इन्द्र-धनुषके सातों रंग झलक उठते हैं ।

प्रो. नईम यद्यपि स्थानीय कालेजमें दर्शनके अध्यापक हैं, किन्तु राग, रंग और काव्यकला से उन्हें गहरा प्रेम है, पुरखे इतना पैसा छोड़ गये हैं कि वे अपनी इच्छाके अनुसार इन कलाओं का रस-पान कर सकें ! बम्बईमें मकानोंके अभाव के कारण उन्हें अभी रुचिके अनुसार घर नहीं मिल सका, इसलिये कभी जूहू, कभी दादर और कभी चौपाटी के सैकत तट पर वे अपने कलाकार मित्रों के साथ जा पहुँचते हैं और नित्य नये रंग बदलते सागरके दर्शनके साथ साथ संगी और कलाका भी रस पाया करते हैं ।
पर्दा उठते समय उस्ताद असगर हुसेन एक हल्का फुल्का गाना सुना रहे हैं—]

पपिहा पी की बोली न बोल
कूकसे तेरी हुक उठत है, नयनन झर झर नीर बहत है
बिरह अगनमें आप जरत हूँ
पी बिन करुं कलोल ।
पापिहा पी की बोली न बोल ।

तूफान से पहले

नईम—लाहौल विला कुव्वत, बिरह अगनमें जलकर कलोल करूं !

[पृष्ठ भूमिपर अँधेरा बढ़ जाता है और समुद्रकी लहरें गहरी-नीली गँदली और फिर काली पड़ जाती हैं । नाटक ज्यों ज्यों बढ़ता है, पृष्ठ भूमिमें टोलीयाँ बढ़ती जाती हैं । असगर हुसेन प्रो. नईम की बात नहीं सुनते; बराबर गाये जाते हैं !]

धीर धरो मन मानो सजनी, कहे व्याकुल निस दिन रजनी
पिया मिलन की आस न छोड़ो

दुःखके द्वार न खोल
पपिहा पी की बोली न बोल

नईम—बस करो उस्ताद, बस करो ! तुमसे अमृत बरसानेके लिये कहा था; जहर पिलानेके लिये नहीं ।

असगर हुसेन—जहर !

नईम—यही जो तुम इस गीतके रूपमें बराबर हमें पिलाए जा रहे हो ।

असगर हुसेन—[चकिन] यह पहेली मेरी समझमें नहीं आई, प्रोफ़ेसर साहब !

नईम—भाई मेरे इस गीतके बोल इतने लचर और लगौ हैं कि.....

असगर हुसेन—क्यों उनमें क्या बुराई है ?

नईम—मैं पूछता हूँ, उनमें भलाई क्या है ? [दसँकर] बिरहकी आगमें जलनवाला रोये या कलोल करे, जो कुछ भी करेगा, आप ही करेगा । फिर पहले बन्दमें ' आप ' का शब्द फिजूल नहीं तो क्या हैं ! और फिर उस्ताद, बिरह के दुखमें जलते हुए किसीको कलोल करते आज ही सुना है ।

हरशाद—क्यों कलोल तो.....

नईम—[हाथके इशारेसे उसे चुप करते हुए] कलोल हिन्दीका शब्द है । इसका मतलब है—साथीके संग खेलना मुहब्बतका खेल । यहां साजन तो बिदेसमें बैठे हैं, सजनी उनकी यादमें जलती हुई कलोलें कर रही है ।

पका गाना

लाहौल विला कुव्वत । फिर दूसरे बन्दमें निसि दिनके साथ रजनी ।
कमबख्त गीत लिखनेवालेको यह भी मालूम नहीं कि निस दिनका
मतलब ही रात दिन है ।—निस दिन रजनी...

गफ़ार — [तबलेको एक तरफ़ करके ठहाका मार कर हँसते हैं] लेकिन उस्ताद
साहिब जो गीत गा रहे हैं उसे तो दामोदर फिल्म स्टार और बाई नज़ीर
बाईने गाया है ।

इरशाद— और इसकी तज़ें मशहूर म्यूज़िक डारेक्टर कुन्दनलालने बनाई हैं ।

नईम—अगर उस्ताद गफ़ार हैदर और मास्टर इरशाद अपनी दिलचस्पियोंको
तबले और सारंगी तक ही रखें तो अच्छा है । [हँसते हैं] इसमें शक
नहीं भाई कि इसकी तज़ें एक मशहूर म्यूज़िक डारेक्टरने बनाई हैं और
इसे एक मशहूर फिल्म स्टारने गाया है और एक मशहूर डारेक्टरने
डारेक्ट भी किया है, लेकिन इस गीतका लिखनेवाला शायर नहीं
यकीनन कोई घसियारा है । क्यों हमदम साहिब ।

हमदम—आ भैयाँ, इन फिल्मवालोंसे खुदा ही बचाये । एक बार एक फिल्म
डारेक्टरसे मुलाकात हुई । कहने लगे—“ हमें भी कोई गीत वीत दीजिये
हमदम साहिब । ” मैंने कहा—“ गुलाम हाज़िर है, जैसा कहिये
लिखदुँ । ” फरमाने लगे, “ वह आपने फिल्म ‘ खजानची ’ देखा
होगा । उसका गाना है—मुझे मारगयी, मारगयी रे । ” मैंने कहा,
“ हुज़ूर फिल्म तो नहीं देखा, लेकिन गाना इतनी बार सुना है, कि
कान पक गये हैं । आजकल लगभग रोज़ रेडियो पर ब्राडकास्त होता
है । ” बोले, बस, उसीकी तरज़ पर एक फड़कता हुआ गीत दीजिये ।
मौका बस इतना ही समझ लीजिये कि एक सेठके सामने एक नर्तकी
गाती है, लेकिन नर्तकी अलामत है भारतके मजदूर तबकेक़ी और वह
गाने ही गानेमें बता देती है कि किस तरह पूंजीपतिने उसे लूट लिया
है । ”

१. यकीनन : निश्चयही, २. अलामत : प्रतीक, ३. तबका : बर्ग

तूफान से पहले

नईम—[हँसकर] वाह !

हमदम—मैंने लिखा—

मैं तो बाज़ आई, बाज़ आई, बाज़ आई रे
जालिम ! दिलके लगानेसे, जी के जलानेसे, तेरे बहकानेसे बाज़ आई

अँखियां मेरी मदमस्तानी कर डालीं बेनूर
हाय यह मेरी मस्त जवानी आज थकनेसे चूर -

लूट लिया, हाय लूट लिया, जालिम लूट लिया रे

तुमने ! मुझको बहकानेसे, जीके जलाने तेरे बहकानेसे, बाज़ आई—

[कुछ लोग और आ शामिल होते हैं । नईम और दूसरे साथी
हमदम साहिबको दाद देते हैं]

नईम, इरशाद, गुफ्फार, दीपक आदि क्रमश—खूब । वाह वा ! क्या
खयाल बांधा है । एकदम सुन्दर !

हमदम—लेकिन डारेक्टर साहबने यह सुनकर मुँह सिकोड़ा और बोले—इसमें
कुछ सेक्स अपील नहीं । ‘ जुल्फ कहे मेरे पेच निराले ’ में जो बात है
वह पैदा नहीं हुई । [उपेक्षा और क्रोधसे] नक्काल कहीं के !

[नईम आदि पूरे जोरसे कहकहा लगाते हैं]

आर फिर ये म्यूज़िक डारेक्टर दो चार मशहूर चलती हुई ट्यूनोंको
मिलाया, स्टूडियोके शायरको बुलाया और कहा कि इस पर गीत लिख
दीजिए । शायरने गीत लिखा । उन्होंने सुनकर सिर हिलाया, कि नहीं
यह ट्यूनमें पूरा फिट नहीं आता । शायरने कुछ यहाँ जोड़ और कुछ
वहाँसे तोड़ — गीतको ट्यूनपर फिट कर दिया । रहा गीत का मतलब, सो
वह रहा या ख़त्म हुआ इससे किसीको गुर्ज नहीं ।

दीपक—बिल्कुल ऐसी ही घटना मेरे साथ भी घटी, हमदम साहिब । एक
रिकार्ड कम्पनीमें रिकार्डिंग जारी था । मुझसे एक गीत लिखनेको कहा

पक्का गाना

गया । रिकार्ड जल्दी ही भरा जाना था । मैं गीत लिखकर ले गया । उसका जो अंजाम म्यूज़िक डारेक्टर की टीका टिप्पणीके बाद हुआ, उसका अनुमान आप उसे सुनकर ही लगा सकते हैं । गीत का एक बन्द था :

ब्रज की गलियां
सुन्दर कलियां
भौरों सा रस लेने मुरारी
मुरारी बिहारी
गिरिवर-धारी

म्यूज़िक डारेक्टर साहिबने जब ट्र्यून बनाई और उनकी आवश्यकताके अनुसार मैं ने अदला-बदली की तो गीतकी सूरत यह बन गई :

ब्रज की गलियां
सुन्दर कलियां
करें रँगरलियां
राधे !
भौरों सा रस लेते
मुरारी
मुरारी बिहारी गिरिवर धारी

—रँगरलियां कौन करता है--ब्रजकी गलियां या सुन्दर कलियां ? फिर यह राधे क्यों और कहाँसे आ गयी और इस सारे बन्दका अर्थ क्या हुआ ?—इन सब बातोंसे मतलब नहीं । म्यूज़िक डारेक्टर तो इसकी ट्र्यून पर झुमते । जब वे गाते । हुये ' रँग रलियाँ ' को ऊपर ले जाते और सिरको झटका देकर ' राधे ' कहते और फिर स्वरको नीचे ले आते तो नाच कर रह जाते ।

रमेश : यह आपकी ऊपर नीचे की बात सुनकर मुझे हमदानी साहिबकी सज्जन अप्प [Up] और सजनी डाऊन [down] वाली बात याद आ गई ।

तूफान से पहले

नईम : क्या साजन अप्प और सजनी डाऊन ?

रमेश : आप जानते हैं, जबसे अशोक कुमार और देविका रानीका दोगाना—
“ तुम मेरे साजन,—तुम मेरी—तुम मेरे ” जनताने उठाया है, कोई भी फिल्म दोगानेके बिना पूरी नहीं होती। फिर गानेमें साजन और सजनीके शब्द जरूर होने चाहिए। एक बार एक हिन्दी कविने सजनीके स्थान पर ‘ आली ’ लिख दिया—‘ हम सजनी माँगता है ’ बंगाली म्यूज़िक डारेक्टर चिल्लाये, ‘ इस जाँगी सजनी होना चाहिये । ’ [और एक टोली आती है]

नईम : यह लीजिये सब रेडियो आर्टिस्ट भी आगए। शायद अब जाकर रिहर्सल खत्म हुई है पीर साहिब की। क्यों राजेश ?

राजेश : यह पीर साहिबकी रिहर्सल भी [बेजारीसे सिर हिलाता हैं] भगवान बचाए उससे। “ बन देवी ” में कहींसे किस्मतका मारा ‘ कृपा ’ शब्द भी आ गया। नसीम उसे ‘ क्रपा ’ कह रही थी। बस यह वक्त आ गया उसे सिखाते-सिखाते।

दीपक : कोई हिन्दी जाननेवाली अर्टिस्ट क्यों नहीं रखते यह रेडियोवाले।

राजेश : और कौनसा ठीक काम करते हैं वे। रेडियो का जिक्र छोड़िये। आप जानते हैं यह मेरी दुखती रग है।

नईम : आइए, आइए। बैठिये। यह रमेश एक दिलचस्प किस्सा सुना रहे हैं—साजन अप्प और सजनी डाऊन।

राजेश और उनके साथी—[बैठते हुये] क्या ?

रमेश : हमदानी साहिबको एक बार साजन और सजनीवाले एक दोगानेकी ट्यून बनानेके लिए कहा गया। उन्होंने एक बहुत अच्छी ट्यून बनायी। पिकचरके डारेक्टर बंगाली थे। उन्होंने सुनी तो कहने लगे—साजनको अप्प [up] माँगता है, सजनी डाऊन [down] होना चाहिये। हमदानी साहिब चकराए। चकितसे डारेक्टरके मुँहकी ओर देखने लगे।

१ जगह; बन देवी उर्दूके प्रसिद्ध नाटककार आगा इश्क काश्मीरीका प्रसिद्ध नाटक है।

एक गाना

आर्टिस्ट बड़े तन्मय हो कर गा रहे थे। वे सब अचानक रुक गये।
 “साजन अप्प, सजनी डाऊन ! सजनी डाऊन होना चाहिये” डारेक्टर
 चिल्लाये “आहिस्ता होना चाहिये।” और उन्होंने अपनी बेहद भोंडी
 और भद्दी आवाज़में गाकर समझाया तो हम लोग समझे कि ‘साजन’
 कहते वक्त ऊपर जाना चाहिये और सजनी कहते वक्त नीचे आना
 चाहिये।

नईम : साजन अप्प और सजनी डाऊन ! [जोरसे ठहाका मारकर हँस पड़ता है।
 इस कहकहेमें दूसरोंके अट्टहास भी शामिल हो जाते हैं] न जाने लोग यह
 सब लचर गीत किस तरह मजे ले-लेकर सुनते हैं। मैं तो जब भी कभी
 इन फिल्म-स्टारों और रेडियो स्टारोंके रिकार्ड सुनता हूँ, जी चाहता है
 कि कहींसे ये सब रिकार्ड इकट्ठे करके उनका अम्बार लगादूँ और फिर
 चुपकेसे उसे तीली दिखादूँ।

रमेश : लेकिन और रिकार्ड बन जाएंगे। रिकार्डोंको जलानेसे क्या फिल्म
 कंपनियाँ जल जाएँगी, कि रिकार्ड कंपनियाँ भस्म हो जाएँगी, कि
 रेडियो स्टेशन भभूका बनकर डड़ जाएँगे या अनपढ़ डारेक्टर, एक्टर,
 श्रोता, दर्शक खत्म हो जाएँगे। [लैचर देनेके अंदाज़में] ज़रूरत इस
 बातकी है कि यह सारेका सारा नज़ाम, यह सिस्टम, यह व्यवस्था बदली
 जाए। यह दासता, यह गुलामी.....

दीपक : [दोनों हाथ पैला कर] शान्ति, शान्ति, शान्ति !

नईम : और मैं सोचा करता हूँ कि जहाँ लाखों आर्टिस्टों और सीन-सीनरों
 पर खर्च किया जाता है, वहाँ अच्छे शायरों और कहानी लेखकों को क्यों
 नहीं बुलाया जाता।

हमदम : पंजाबी लोग जिसे ‘भोला बादशाह’ कहते हैं, आप भी नईम साहिब
 बस वह हैं। इस वक्त अच्छेसे अच्छे कवि और कहानी लेखक फिल्म कम्प
 नियोंमें हैं। कौनसा तीर मार रहे हैं वे ? उनके, उन्हींके क्यों, किसी
 डारेक्टर या एक्टर के हाथ भी इख्तियार ही क्या है ? सब मशीनके
 पुजे हैं। और इस मशीन की हथी प्रोड्यूसरके हाथमें है।

तूफान से पहले

दीपक : प्रोड्यूसरके भी नहीं, पूंजीपति के हाथमें, और पूंजीपति इस मशीनसे जो कुछ पैदा करना चाहता है वह, यह आपका आर्ट नहीं, बल्कि रुपया है। उसे गालियाँ खाकर भी रुपया मिल जाए तो उसे इसमें भी शिक्षक न होगी। वह धड़ाधड़ ऐसी फिल्में बनायेगा जिनमें सरमायेदारोंको गालियाँ मिलें और उसकी जेब गर्म हो। लेकिन ज्यों ही पब्लिक उनसे उकताई कि उसने फिर स्टंटबाजी शुरू की। सरमायेका इस्तेमाल इंडस्ट्रीसे हटे तो कुछ हो।

राजेश : पूंजीपति क्या करे। पब्लिकका मज़ाक ही जलील है।

नईम : पब्लिक का मज़ाक [व्यंगसे हंस्ता है] न जाने इस 'पब्लिकके मज़ाक' की आड़में कितने गंधे अपना उल्टू सीधा कर रहे हैं। उस्ताद असगर हुसेन जो गीत गा रहे थे, उसमें अगर 'काहे ब्याकुल निस-दिन रजनी' के बदले 'काहे ब्याकुल हो दिन-रजनी' या 'काहे तुम व्याकुल दिन-रजनी' होता, तो पब्लिक क्या शायरको संगसार कर देती, लेकिन कौन जाने इसे किसी शायरने लिखा है या कहीं किसी आर्टिस्ट या म्यूजिक डारेक्टर, या फिल्म डारेक्टरने कुछ उर्दू और कुछ हिन्दी के शब्द लेकर धर घसीटा है !

खुननेवालोंमेंसे एक : [जो सिरपर लम्बी चोटी रखे है] यह फिल्मवाले हिन्दी की गर्दन पर जिस तरह छुरी फेरते हैं, वह कुछ हमी लोग जानते हैं और उर्दू वाले शोर मचाते हैं कि फिल्मोंसे हिन्दी का प्रचार किया जा रहा।

नईम : अरे पण्डितजी, ये लोग उर्दूकी गर्दन जिस उल्टे छुरेसे काटते हैं, वह भी कुछ हमीको मालूम है—“ये गीत हैं दर्दिले, यह राग है”—कहाँ की उर्दू है ? फिर वह एक मशहूर फिल्मी ग़ज़ल है, क्या नाम है उसका ?—[सोचते हैं] हां,—दुनियामें ग़रीबोंको आराम नहीं मिलता।

असगर हुसेन : हाँ, हाँ।

संगसार करना=पत्थर मार मार कर ख़त्म कर देना। खटरा=बम्बई की भाषा में छकड़े को कहते हैं।

पक्का गाना

नईम : मोटार ड्राइवरसे खटाराचलानेवाले तक हर कोई इसे मजेसे सिर हिला हिला कर गाता है। मैं जब भी इसे सुनता हूँ, लहूके घूट भर कर रह जाता हूँ। ज़रा गाना तो उस्ताद वह क्या है उसका दूसरा मिसरा—

असगर हुसेन : [गाते हैं]

दुनियामें गरीबोंको आराम नहीं मिलता

रोते हैं तो हँसनेका पैग़ाम नहीं मिलता

नईम : हँसनेके पैग़ाम कैसी उर्दू है सुबहान अल्लाह !

असगर हुसेन : अरे भाई तुम तो बालकी खाल निकालते हो।

नईम : बालकी खाल ? मैं कहता हूँ, मामूली खामियोंका तो मैं जिक्र ही नहीं करता। मैं जो खामियाँ बताता हूँ, उन्हें तो एक गधा भी जान सकता है।

द्रीपक : हालाँ कि गधे कभी नहीं जानते, सिर्फ़ ढाचूँ ढींचूँ करते रहते हैं।

नईम : मैं कहता हूँ, पण्डितजी मुझसे यह सब नहीं सहा जाता। अव्वलतो इन फिल्मोंमें गज़लें ही यर्ड रेट होती हैं और फिर जुल्म यह कि उन्हें गाया भी जाता है।

असगर हुसेन : यह क्या बात की आपने नईम साहिब ?

नईम : गले बाजीके शौकमें खाह-म खाह ग़ज़लकी मिट्टी पलीद की जा रही है। ग़ज़ल गानेकी चीज़ ही नहीं।

असगर हुसेन : गानेकी चीज़ ही नहीं और जो बरसोंसे यह गाई जा रही है।

नईम : [हँसते हैं] बरसोंसे इतनी ग़लत रस्में और इतने लम्बे रिवाज जारी हैं। मैं कहता हूँ हज़रत अनगिनत ऐसी ग़ज़लें हैं जिनका पूरा पूरा मतलब गाने में अदा हो ही नहीं सकता।

असगर हुसेन : भला हम भी तो सुनें कौन-सी ऐसी ग़ज़ल है ?

तूफ़ान से पहले

नईम : ग़ालिबकी यही ग़ज़ल ले लीजिये किसी को दे के मिल कोई नवासंजे फ़ुंगा क्यों हो—?

असगर हुसेन : क्यों इसे क्यों नहीं गाया जा सकता ?

नईम : इसमें कई ऐसे शेर हैं जिनका मतलबही गानेमें हवा हो जाता है ।

असगर हुसेन : जैसे

नईम : जैसे यही शेर लीजिये—

कहा तुमने कि क्यों हो ग़ैरके मिलनेमें रुसवाई
बजा कहते हो, सच कहतेहो, फिर कहियो कि हौं, क्यों हो ?

हमदम : [असगर हुसेनसे] क्यों उस्ताद !

असगर हुसेन : मैंने इसे दसियों बार गाया है ।

नईम : तो जरा गाईये

असगर हुसेन : लीजिये

[इसी शेरको गाकर सुनाते है]

हमदम : वाह क्या कहने हैं उस्तादके ।

नईम : यह दाद आपके गलेको है ।

असगर हुसेन : यह आप कह सकते हैं । नहीं, मैंने शेरके मतलबका पूरा-पूरा खयाल रखा है ।

नईम : ' में ' को इस ग़ज़लमें ' मैं ' से ज्यादाह नहीं पढ़ा जा सकता और आपने तानमें इतना लम्बा कर दिया है कि मैं क्या कहूँ । फिर इस ग़ज़लका मतलब हम सभी जानते हैं और आपने इस तरह गाया भी नहीं जिस तरह पक्का गाना गाने वाले ग़ज़लें गाते हैं और जिनकी आ...आ...ई...ई में शेरका मिसरा ही डूब कर रह जाता है । आप यह बताईये कि क्या नयी ग़ज़लें भी इस तरह समझमें आ सकती हैं ।

पक्का गाना

असगर हुसेन : क्यों नहीं !

नईम : मुशायरेमें जाकर पढ़ने वालोंको गलेकी दाद दी जाती है, शेरोंको नहीं ।
उनकी गहराई और बारीकीको इतनी जल्दी समझा ही कैसे जा सकता है ?

दोपक : वहाँ समझनेकी फुर्सत ही किसे होती है । जब कोई कवि गाकर कविता पढ़ता है तो सुनने वालोंका ध्यान कविताकी पंक्तियों, उनकी बारीकी या गहराईकी ओर नहीं होता, गाने वालेके स्वर की ओर होता है । यदि उसने गला अच्छा नहीं पाया, तो उसे लूलू बोल कर स्टेजसे उतार दिया जाता है और अगर उस पर गंधर्वोंकी कृपा है, उसके गलेमें रस है, तो उसे रहीसे रही कविता पर भी दाद मिलती है ।

असगर हुसेन : यह आप क्या कहते हैं पण्डितजी ।

हमदम : आप को उस्ताद साहिब इन मुशायरोंका इल्म नहीं । मुझे एक मुशायरोंकी याद आती है । मैं नया नया लाहौर गया था—एफ़. सी. कालेज हालमें मुशायरा था । दो गाने वाले शायरोंके बाद मिर्ज़ा अलीम बेग़ चुगताई शेर पढ़नेके लिये खड़े हुये । अपने कंधोंको ज़रा उठाकर नथने फुलाकर ओंठ सिकोड़ कर, अपने आधे जिस्मका बोझ छड़ी पर डालकर उन्होंने एक अजीब शानसे सुननेवालोंकी तरफ़ देखा और फिर सीधे सादे ढंगसे मतला * अर्ज किया । लेकिन अभी वह पूरा शेर भी न कह पाए थे कि सुननेवालोंमें से शोर उठा — “ तरन्नुमसे ! तरन्नुमसे ” × मिर्ज़ाने एक नजर सुननेवालोंपर डाली । उनके सिकुड़े हुए ओंठ और सिकुड़ गये, नथने और फूल गये, गर्दन घँस गई, कंधे इतने उमर गये कि पीठका कूबड़ दिखाई देने लगा—वहींके—वहीं वे कुर्सीपर बैठ गये ।

वहाँके एक मुशायरेमें तो बेचारे जोश साहिबों को किसीसे नहीं सुना ।
प्रेजिडेंटने बहुतेरा शोर मचाया, सुनने वालोंको कोसा, डांटा, जोश साहिब

* × ० मतला=गज़ल की पहली पंक्ति, तरन्नुमसे=स्वरसे

× जोश साहिब उर्दू के प्रसिद्ध कवि हैं

तूफान से पहले

दोचार बार उठे भी, लेकिन सदा उनकी आवाज़ “ तरन्नुमसे !” में डूब गई । हार कर चुप हो गए ।

नईम : और शिमलेके एक आल इंडिया मुशायरे में तरन्नुमसे गाई जाने वाली चीज़ पर सुननेवाले कुर्सियों से उछल उछल पड़े थे, वह भी ज़रा सुन लीजिये ।

आह कुंजइन, वाह कुंजइन
आह न भर लिछाह कुंजइन

देख तुझे चुप बोली मेरी	आ मैं भरदू झोली तेरी
आलू, मटर, टमाटर लेकर	दिलके टुकड़े तुझको देकर
मैं अपना संसार बसातूं	इसमें कुछ अरमान सजातूं
उस संसारमें हो इक मन्दिर	इक मूरत मन्दिरके अन्दर
वह मूरत मूरत हो तुम्हारी	इस मूरतका बनू पुजारी

आह कुंजइन, वाह कुंजइन
आह न भर लिछाह कुंजइन

लम्बे लम्बे बाल हैं तेरे	गोरे गोरे गाल हैं तेरे
नयनोंमें कुछ ऐसा रस है	मद भी जिसके आगे बस है
लम्बी सुन्दर नाक है तेरी	सूरत कुछ बेबाक है तेरी
भूखमें यह बेबाकी लेकिन	है जैसे मिट्टीका बर्तन
एक बार गर हाथसे छूटे	जुड़े न एक बार जो टूटे

आह कुंजइन, वाह कुंजइन
आह न भर लिछाह कुंजइन

दीपक : आपने अँल इंडिया मुशायरेकी बात की तो मुझे एक अखिल भारतीय कवि सम्मेलनकी बात याद आ गई । ज़रा पहलेका ज़िक्र है । मैंने अभी कविता करना शुरू ही किया था । अभी मेरी सिर्फ़ छः कविताएँ पत्रोंमें छपी थीं कि मुझे गोरखपुरके आल इंडिया कवि-सम्मेलनमें शामिल होनेका निमन्त्रण मिला । मंजूरी भेजने पर वे लोग इंटरका किराया तारसे

पक्षा गाना

भेजनेको तैयार थे। मैं तब थर्डमें रुफर करना भी बड़ी बात समझता था। छः कविताओंकी पूँजी और आल इंडिया कवि-सम्मेलनमें शामिल होनेकी दावत। मेरी खुशी का अंदाज़ा आप लगा सकते हैं। मैंने मंजूरी दे दी, रुपये आगये और मैं लाहौरसे गोरखपुर पहुँचा। वहाँ जाकर मालूम हुआ कि कवि-सम्मेलनका प्रबंध करने वालोंने बड़े-बड़े जमींदारों और राजाओंको फॉस रखा है, और हिन्दीके जितने कवियोंके नाम उन्हें मिले उन सबको उन्होंने बुलावा भेजा है। ३०० के लगभग कवि पहुँचे भी थे। इतने कवियोंको कविता पढ़नेका समय कैसे मिल सकता था ? सो अधिकांश स्वादिष्ट भोजन पर हाथ साफ़ करके डकार लेते और कविता पढ़ने की हसरत दिलहीमें लिये हुये पंडालके चक्कर वाटते।

नईम : आप भी तो उन्हींमें होंगे।

दीपक : मैं उनसे भी बदकिस्मत था।

नईम : [आश्चर्य से] बदकिस्मत !

दीपक : मुझे कविता पढ़नेका बे पनाह शौक था। इसलिये मैं पहले ही से स्टेज पर जा बैठा था और धीरे-धीरे आगे बढ़ता-बढ़ता बिल्कुल सेक्रेट्रीके पास पहुँच गया था। भीड़ बहुत थी और इतनी भीड़को देख कर सेक्रेट्री महोदय कुछ घबरा भी गये थे। सम्मेलनका रंग जमानेके लिये पहले प्रसिद्ध कवियोंको, गाने वाले आखाड़िये कवियोंको, बुलाया गया। अभी दो चार हीने कविता पढ़ी थी कि भीड़मेंसे ब्रजभाषाके दो एक कवियोंका नाम लिया जाने लगा। यह शोर इतना बढ़ा कि सेक्रेट्रीने विवश होकर एकको बुलाया। इसके बाद मंच पर काफी देर तक ब्रज भाषाके कवियोंका राज रहा। तभी किसीने कवि भौंदूजीको सुननेकी इच्छा प्रगट की। इसके बाद 'भौंदूजी' 'भौंदूजी' का वह शोर मचा कि भौंदूजीको बुलाया गया।

नईम : भौंदू ?

दीपक : हास्य रसके प्रसिद्ध कवि हैं। मँसलाकद, धोती कुर्ता और कोट, सिर पर गांधी टोपी—मूँछोंमें मुस्कराते, मिसकीन सी सूरत बनाए एक बार

तूफान से पहले

जो भौंदू कवि आकर बैठे तो एक घंटे तक वही पढ़ते रहे। सेक्रेट्रीने कई बार उन्हें उठानेकी कोशिश की। दूसरे कवियोंका नाम भी पुकारा; दूसरे कवि स्टेजपर आए भी, भौंदूजीने हाथ जोड़कर विदा भी लेनी चाही, लेकिन जनता भौंदूजीको छोड़ने पर तैयार ही न हुई। सेक्रेट्री तो अलग रहे, प्रधान और दूसरे कवि बड़े परेशान हुए। तब मुझे एक बात सूझी। मैंने सेक्रेट्री साहिबके कानमें कहा —“ आप इस बातका एलान कर दीजिए, कि जनता सिर्फ भौंदू कवि ही को सुनना चाहती है इस लिये आजका सारा दिन भौंदू जी ही पढ़ेंगे ” बस इस एलानका होना था भौंदूजीने जनतासे गिड़गिड़ा कर छुट्टी माँगी [उनकी पूँजी भी शायद खत्म हो चुकी थी] और जनता भी चुप रही। अब ऐसे लोकप्रिय कविके बाद कौन पढ़े। कोई तैयार न होता था और जनता तालियाँ पीट रही थी। तब हड़बड़ा कर सेक्रेट्रीने मेरी ओर देखा।

अब दीपक, लाहौरके कविता पढ़ेंगे—मैं उठा, मालूम हुआ जैसे आधे शरीरको लकवा मार गया है। जनताके उस मूडमें मेरी जो दुर्गति हुई होगी उसका आन अन्दाज़ा लगा सकते हैं।

[नईम साहब और उनके साथी ठहाका मारकर हँस पड़ते हैं]

अब ज़रा उस हास्य रसकी बानगी भी देख लीजिए !

कौन हरे अब भूक पेटकी

सूखे टुकड़ेही मिल जाएँ चरचा कसैी चाकेलटकी—कौन...

बी. ए. करके बेकारी है

जीने तकसे बेजारी है

आई है किस काम पढ़ाई

खोई आँखोंकी बीन-ई

अनपढ़रहते तो अच्छा था पाते एवजी कहीं भेट की—कौन...

पक्का गाना

सच है आया उनपर जोबन से
वेणी क्या, लहराती नागिन
आँखोंमें, ओंठोंमें रस है
जेबें खाली हैं तो बस है

चक्कर काटा करो निरर्थक खाक छानते हुए गेटकी — कौन...

अपना इश्क तो है धोबनसे
फूटे पड़ते उस जोबनसे
गौर नहीं पर है क्या नटखट
छीन लेगई दिल क्या झटपट

सोच धुलाईके हैं लेकिन दिन दिन बढ़ते हुए रेटकी

हमदम : लेकिन यह तो तरक्की पसन्द है !

नईम : तरक्की पसन्द ! [ठहाका मारते हैं] यह तरक्की पसन्द की भी खूब कही ।

रमेश : [आगे बढ़कर] मैं हमदम साहिब से सहमत हूँ। माफ़ कीजियेगा लोग मुझे भी प्रगतिशील कहते हैं ।

नईम : प्रगतिशील !

रमेश : जी, यही ' तरक्की-पसन्द ' मैं यह कहना चाहता हूँ कि यही कविता नहीं जो पन्डितजीने सुनाई, बल्कि आपवाली नज़्म भी पूरे तौर पर प्रगतिशील है ! आपको कुँजड़न पर कविता लिखना बुरा क्यों लगा, इसीलिये ना कि वह नीचे दर्जेसे सम्बन्ध रखती है ? लेकिन आजका प्रगतिशील, श्रीमान, आकाश की ओर नहीं देखता । वह धरती की ओर, बल्कि यों कहिये कि पाताल की ओर देखता है । उसके विचार में आकाश की ओर इतना देखा जा चुका है कि आँखें पक गई हैं ।

नईम : [हँसकर] इसलिये अब फ़ावडा लेकर जमीन खोदने की जरूरत है—

तरक्की पसन्द=प्रगतिशील

तूफ़ान से पहले

आँखों को भी आराम मिलेगा और अनजाने भेद भी खुलकर सामने आ जाएँगे ।

रमेश : यों क्यों नहीं कहते कि धरती को इस हदतक भुलाया गया है कि उसने तंग आकर इतना शोर मचाया है कि अब सबकी निगाहें उसीकी समस्याओं में उलझकर रह गई हैं । देवताओंपर बहुत कुछ लिखा गया । आजका प्रगतिशील उनके बारेमें लिखना चाहता है जो इन्सान होकर भी कुत्तों और पिछोंसे बदतर है । फिर अगर वह कुंजइन.....

नईम : [हँसकर] या कहारन, पनिहारन, धोबन, भंगन ।

महतराना हो के रानी, मुस्करायेगी ज़रूर !

कोई आलम हो जवानी गुनगुनायेगी ज़रूर !

रमेश : [कड़तासे] या कहारन, पनिहारन, धोबन, भंगनपर लिखता है तो क्या बुरा करता है । वह मनुष्यको सृष्टिका सर्वश्रेष्ठ प्राणी समझता है और धोबन या भंगनको इस लिए हेय नहीं मानता कि उसके पास आपकी भाँति धन नहीं, ज्ञान नहीं, ऐश्वर्य नहीं । वह गंदी मैली दुर्गंध भरी गलियोंमें रहती है । वह उस दिनको समीप लाना चाहता है जब धोबन या भंगन नाम सुनकर आप नफ़रतसे नाक न सिकोड़ें बल्कि...

दीपक : शान्ति...शान्ति...शान्ति ।

नईम : लेकिन उसकी निगाहें वही पुरानी हैं । इन निगाहोंकी भूख भी वही पुरानी है । वह कुंजइन, भिखारन, या भिखमंगनकी उलझी हुई लटोंका ज़िक्र इस तरह करता है जिस तरह किसी शहज़ादीकी नागिनों की काकुलोंकी और फिर उन गंदी मैली गलियोंमें भी वह अपने नफ़सकी, अरमान भरे दिलकी प्यास बुझानेका सामान ढूँढ़ लेता है । इन जगहों पर पहुँच कर उसके, पैरोंमें तेज़ी आ जाती है, उसकी आँखें चमक उठती हैं और उसके मुँहसे राल टपकने लगती है । [हँस कर] वहीपुराना भगोड़ा है वह ।

१. काकुल : कुतल २. नफ़स : वासना ।

रमेश : आप उन कवियों की बात करते हैं जो तरक्कीपसन्द नहीं, लेकिन बनते हैं । और फिर सोलहों आने तरक्कीपसन्द कवि अभी गुमनामीके धुंधलकों में टामक टोये मार रहा है । आनेवाला कल उसे पहचान पायेगा ।

हमदम : ऐ म्यों, बीते कल में भी तरक्कीपसन्द थे और मैं तो कहता हूँ हर वक्त और हर ज़माने में लोग तरक्कीपसन्द रहे । आप हँस देंगे पर “ गोरख धंधे ” जैसे पुराने नाटक का पहला सीन पूरे तौर पर तरक्कीपसन्द है । [रेडियो पार्टीकी ओर देखकर] अमजद और अफ़ज़लने उस नाटक में पार्ट किया है । अभी चन्द दिन पहले तो रेडियो पर हुआ था, क्यों अमजद याद है न वह ! ज़रा सुनाओ तो ।

अमजद : कौनसा सीन !

हमदम : अरे म्यों वही कोयले की खान वाला ! जहाँ रेलवे लाइन पर ठेला गाड़ीमें मजदूर कोयला भरते हैं । तुम और अफ़ज़ल हीने तो उस में मजदूरोंका पार्ट किया था । ज़रा सुनाओ न वह गाना !

अफ़ज़ल : अजी अब उस में क्या रखा है ?

नईम : अरे भई सुना दो ज़रा ।

अमजद : चलो, अफ़ज़ल सुना दो ।

अफ़ज़ल : डायलाग समेत ?

नईम : क्या हर्ज है ?

[सुनाते है]

अमजद : इलाही तेरा हज़ार हज़ार शुक्र है कि हमारी रोज़ी का ज़रिया काला है मगर रोज़ी काली नहीं है ।

अफ़ज़ल : कोयलों की कालखने हमारा मुँह काला कर रखा है, लेकिन यह स्याही क़यामतके दिन तेरे आगे शरमाने वाली नहीं है :

[दोनों गाते हैं]

हमारे जिस्म हैं गो सूरते ज़ागो जगुर्न काले

१. द्वार, २. चील कौआ ।

तूफ़ान से पहले

मगर ऐसे नहीं जैसे जैसे कि हो कालोंके फन काले
हमारा घरभी काला है हमारे पैरहन काले
मिले हैं जीते जी गोया हमें गोरो कफ़न काले
सियाह नामी हमारी उन स्याहकारोंसे अच्छी है
कि है जिनका लिबास उजला तो दिल काले चलन काले

रमेश : लेकिन पुराने नाटक ग़रीबी को बुरा न बताते थे, बल्कि उसे ऊँचा दर्जा देते थे। आजका तरक्की पसंद गरीबीसे जंग करके उसकी हस्ती दुनियासे मिटा देना चाहता है। उसके आलावा, पुराने नाटककोंका उद्देश्य देखने वालोंकी दिलचस्पीका सामान जुटाना था। उनमें रोया भी जाता था तो सुर और ताल से। आजका तरक्की पसन्द अगर हँसाता भी है तो रुलाने के लिये।

अमजद : यह रुलाने के लिये हँसानेकी खूब रही ! बख़ुदा रमेश साहिब, हमें ऐसा हँसाना नहीं चाहिये। कहाँ वह कॉमिक होते थे कि तबीयत बाग़-बाग़ हो जाती थी। अकबर सुनाओ जरा न कोई कॉमिक का टुकड़ा। वही डाली वाला या गुलदम वाला। इन रमेश साहिबको भी मालूम हो कि कॉमिक कैसा होता है !

अकबर : अजी छोड़िए अब उनमें क्या रखा है। [लम्बी सांस लेकर] कहाँ वह न्यू एलफ़ेड कम्पनीकी स्टेज, कहाँ वह सोहराबजीसा कॉमिक एक्टर

अफ़ज़ल : और कहाँ अकबर का वह चंचल हुस्न। खुदा क़सम नईम साहिब जब अकबर औरतका पार्ट करता था तो सत्तर-सत्तर बरसके बूढ़ोंके ईमान डगमगा जाया करते थे। अरे यार, दिखाओ कोई छोटा-मोटा सीन, कोई गाना, कोई नाच।

अकबर : मैं ' डालीका ' पार्ट करूँ तो दूसरा कौन करेगा ?

अमजद : वह गुलदुम वाला नाच क्यों न दिखाओ।

पक्का गाना

अकबर : नाच ! कौनसा !

अमजद : वही बाल जाल वाला

अकबर : अजी हटाइये । मैं अब नाचूंगा ! !

नईम : भई अकबर, हमारी कसम ।

दीपक : अरे भाई तुम नाच शुरू करो । हम कल्पना कर लेंगे कि तुम बीस बरस पहलेकी गुलदुम हो जो न्यू एलफ्रेड कम्पनीकी स्टेज पर लोगोंके दिल छीना करती थी । लो भई, जरा जगह छोड़ दो यहाँ ।

[तत्काल वहीं एक छोटासा दायरा बन जाता है]

अकबर : [उठते हुये] आप जोर देते हैं तो.....

अमजद : [एलान करनेके अन्दाजमें] न्यू एल फ्रेड कम्पनीकी स्टेज । सुन्दरी गुलदुम नाचते हुए आती है । गुलखैरूका पार्ट भी गुलदुम खुदही करती है ।

[अकबर गाते और नाचते हुए बढ़ता है]

बाल जाल गालों पै लाली, नागन लट काली, कि अँखियाँ मतवाली
नाजुक नाजुक कमर
लचके जैसी फूलोंकी डाली
जौवन वाली छब निराली
मेरी उमरिया वाली
कि अँखियाँ मतवाली

[दोहा]

एक तो चिकना पीपलका पत्ता, दूजे चिकना धी
तीजे चिकना मेरा जोबनवां, मेरे यारोंका ललचे जी
बाल जाल—

तूफान से पहले

नईम और दूसरे लोग : वाह, उस्ताद क्या कहने हैं, वाह वा ।

अमजद : भई, किसी कॉमिकका सीन भी हो जाए ।

राजेश : गोल्डन गोली वाला वह सीन हो तो कैसा रहे !

अमजद : पण्डित राधेशामके नाटक परिवर्तनका कॉमिक है, अफ़ज़ल हीने तो किया था रेडियोपर डाक्टरका पार्ट, यह राजेश, बलबीर, हनीफ़ गणेश सभी तो हैं । ज़रा दिखाओ भई, इन्हें पुराने कॉमिककी बानगी ।

अफ़ज़ल : जैसी आपकी मर्ज़ी ।

अमजद : [घोषणाके अन्दाज़में] डाक्टर के- डब्ल्यू. भट्टाचार्यका गोल्डन ऑफ़िस । डाक्टर भट्टाचार्य दो रोगियोंके साथ दाखिल होते हैं ।

[छोटा सा दायरा बन जाता है अफ़ज़ल बलबीर और हनीफ़के साथ बढ़ता है ।]

अफ़ज़ल (डाक्टर) : एक बार कह दिया, दस बार कह दिया, सौबार कह दिया, गोल्डन गोली इस्तेमाल करो । दुनिया भरके रोगोंके लिये गोल्डन गोली रामबाण है ।

बलबीर (पहला रोगी) : हुज़ूर रातसे मेरा पेट फूल रहा है ।

अफ़ज़ल : तो गोल्डन गोलीका लेपकरो । गोल्डन गोलीको तेलमें मिलाकर उसकी मालिश करो, गोल्डन गोलीका प्लास्टर चढ़ाओ, गोल्डन गोली पानीके साथ निगल जाओ ।

हनीफ़ [दूसरा रोगी]—और मुझे क्या हुक्म है ।

अफ़ज़ल : तुम्हें पुराना दमा है !

हनीफ़ : जी—

अफ़ज़ल : तो गोल्डन गोलीसे बढ़कर दमेकी दूसरी कोई दवा नहीं । यही गोली वह गोली है, जो दुनियाके तमाम छोटे बड़े दवाखानोंमें मिलती

पक्का गाना

है, यही गोली वह गोली है जिसका नोटिस और जिसकी जाहिर खबर तमाम समाचार पत्रोंमें सूरजकी किरणोंके समान चमकती है। जाओ, एक रुपया दो और हमारे कारखानेसे गोल्डन गोली खरीद लो।

[दोनों रोगी जाते हैं और तीसरेके रूपमें गणेश आता है।]

गणेश [तीसरा रोगी]—डाक्टर बाबू, डाक्टर बाबू, भाईको निमोनिया हो गया है।

अफ़ज़ल : तो निमोनियाके केसको सिर्फ़ गोल्डन गोली ही फ़ायदा पहुँचाती है। गोल्डन गोली खिलाओ। गोली किसी तरह उसके पेटमें पहुँचाओ।

[गणेश चलनेको होता है]

—देखो ! [रोगी रुकता है] गोल्डन गोली सिर्फ़ हमारी ही ईजाहकी हुई है। नक़्से खबरदार रहना। हमेशा डिब्रिया पर गिन्नीका मार्क देख कर गोल्डन गोली खरीदना। जाओ, एक रुपया देकर कारखानेसे डिब्रिया लेलो।

[तीसरा रोगी जाता है, चौथेके रूपमें खन्ना आता है]

खन्ना (चौथा रोगी)—अजी हज़ूर, हज़ूर मेरे घरमें बड़ी तकलीफ़ है उसके सात महिनेका गर्भ है।

डाक्टर : गर्भ है तो गोल्डन गोली क्यों नहीं खिलाते। बच्चोंको हमल ही में गोल्डन गोली मिल जाने पर जीवन भर बीमारी पास नहीं आती। सुनो, प्लेगमें, कालरामें, थाइसिसमें, मलेरिया, इन्फ़्लूएंज़ा, डाइबिटीज़, डिस्पेसिया, गनोरिया, लिक्कोरिया और निमोनियामें गोल्डन गोली ही बढ़िया डाक्टर है।

[चौथा रोगी जाता है और रमज़ानीके रूपमें राजेश आता है।]

राजेश (रमज़ानी)—वह गोली क्या है बस अल्लाहही अल्लाह है। अजी डाक्टर साहिब !

तूफान से पहले

अफ़ज़ल : अहा, रमजानी आया । देखो रमजानी हमारी गोल्डन गोली ही के कारण हमारा गोल्डन पेलेस, गोल्डन पेपर, गोल्डन डिस्पेंसरी, गोल्डन स्ट्रीट, गोल्डन आफिस और गोल्डन पोष्ट आफिस है ।

राजेश : डाक्टर साहिब इस वक्त मैं यह लेक्चर नहीं सुनने आया हूँ ।

अफ़ज़ल : लेक्चरकी बात नहीं है रमजानी । तार का पता सिर्फ़ गोल्डन है । इससे बढ़कर और क्या सबूत गोल्डन गोलीकी कामयाबीका होगा । और सुनो रमजानी.....

राजेश : रामजानी बाज़ आया जी हज़ूर, कुछ दम तो लीजिए या यह मेल ट्रेन बरेलीसे चल कर रायपुर ही ठहरेगी । [सौ रुपयेका नोट दिखा कर] देखिये यह क्या है ?

अफ़ज़ल : सौ रुपयेका नोट । इतने रुपये की बहुत गोल्डन गोली मिल जायेगा । और एक खुबसूरत कैलेंडर भी मुफ्त नज़र किया जायेगा । इतना ही नहीं कारखानेकी फहरिस्तमें तुम्हारा नाम भी छाप दिया जायेगा ।

रमेश : [स्वगत] खुदा बचाये ऐसे झकीसे । [प्रकट] डाक्टर साहेब ! यह नोट गोल्डन गोलीकी खरीदारीके वास्ते नहीं आया ।

अफ़ज़ल : फिर क्या कोकीन लेने आया है ।

राजेश : अजी गोल्डन भी नहीं, कोकीन भी नहीं, चन्दा बाईन एक शीशी ज़हर मँगाया है ।

अफ़ज़ल : ओह ज़हर ! एक शीशी ज़हर ! हुकम नहीं है । उसके लिये अभी इस तरह बेचनेका हुकम नहीं है । गोल्डन गोली ले जाओ ज़हर का भी काम करेगी—

[अचकचाता है कि क्या कह गया—सब हँसते और दाद देते हैं]

अमजद : वाह वा, सुबहान अल्लाह ! इसे कहते हैं कॉमिक । और फिर यह तो महज़ एक सीनका टुकड़ा है । पूरा कॉमिक देखिए तो मज़ा आजाये ।

पका गाना

यह हँसना हँसाने के लिये है, रुलानेके लिये नहीं। है कहीं इसका जवाब आजके नाटक में, कहीं स्टेज पर देखा है ऐसा दिलचस्प नाच और ऐसा कॉमिक ?

नईम : [व्यंगसे] आजका स्टेज और आजका नाटक ! अरे, भाई जब स्टेजही नहीं तो ऐसा कॉमिक होता कहाँ ? रहा आजका नाटक—तो भाई, वह भी सिर्फ पढ़नेकी चीज़ रह गया है। ड्रामाटिस्ट उसे लिखता है अपने दिमागके स्टेज पर खेलता है अपनी पत्निके सामने पढ़कर और एकट करके उसे सुनाता है और किसी मैगज़ीनमें छपनेके लिये भेज देता है। स्टेज पर उसे खेलनेकी नौबतही नहीं आती। जिस स्टेजका आप जिक्र करते हैं, उसका स्थान आजके सिनेमाने ले लिया है। और सिनेमा पर ऐसे नाच, गाने, दोगाने, सहगाने और ऐसी नकलें रोज देखनेको मिल जाएँगी।

दीपक : अभी सेठ हर गोपालने जो नई कम्पनी खोली है, उसके पहले फ़िल्म हीमें एक नाच-मिला-दोगाना है, बालजालके दोगानेसे भी बढ़कर ! उस्ताद असगर हुसेनही तो देख रेख कर रहे हैं।

अमजद : जिसमें रेडियोस्टार चमेली बाई हैं !

राजेश : अब वह फ़िल्मस्टार बन जायेगी, और तमाशा देखिए—वह कॉमिकका पार्टी करेगी।

अफ़जल : खुदा क़सम, इससे तों अच्छा था, हमारे अकबर ही को उसका पार्ट दे देते। इस उम्रमें भो वह जल्दे दिखाता कि होश हवा हो जाते।

[सब हँसते हैं]

असगर हुसेन : दीपक साहिब ही ने तो लिखा है वह दोगाना।

नईम : और हमें बताया तक नहीं। वाह ज़रा सुनें तो हम भी।

दीपक : अजी, सुननेमें उसका क्या आनन्द आयेगा। चमेली होती तो सुनाते आपको।

तूफान से पहले

अफ़ज़ल : तुम्हीं बनजाओ दो घड़ीको चमेली अकबर । डाली और गुलदुमसे तो बुरी नहीं चमेली ।

राजेश : अरे ! वह चमेली ही तो आरही है । बुलालो ज़रा उसे ।

अफ़ज़ल : नहीं भाई अब वह क्या बात करेगी हम लोगोंके साथ ! सेठकी चहेती है । उसीके लिये तो सेठ हरगोपालने कंपनी खोली है ।

रमेश : अरे बुलाओ, तो; कहना उस्ताद बुलाते हैं ।

असगर : तुम ज़रा कोरस शुरू करो । अभी मँगाए लेते हैं ।

[अहमद अफ़ज़ल और दूसरे कुछेक अभिनेता गाते हैं]

रामू कुम्हार की नटखट छोरी

नटखट छोरी

सिमट सिमट सरमावे—

रेसमका जब लहंगा फूले

लहंगा फूले

छतरीसी बन जावे

नईम : [कहकहा लगाते हैं] वाह ! छतरीसी बन जावे !

[चमेली गाना सुनकर आ जाती है]

चमेली : आदाब-अर्ज उस्ताद साहिब ! कहिए क्या हो रहा है ?

असगर : [रुक कर] कहो तुम किधर !

चमेली : इधर ही ज़रा घूमने चली आई थी । कहिये क्या हो रहा है ।

असगर : ज़रा इस गानेकी रिहर्सल करा रहा हूँ । सेठ साहिब ज़ोर दे रहे हैं कि इसे कल फ़िल्मा लिया जाये । अगर तुम पलभरको बैठ जाओ तो इसकी रिहर्सल हो जाये ।

पक्का गाना

चमेली : यह अच्छी जगह निकाली है आपने रिहर्सलके लिये ।

असगर : अरे भई, इससे अच्छी जगह और कौन होगी । सैर की सैर और काम काम । अकबर को तुम्हारा पार्ट करना पड़ता है और मूड नहीं बनता ।

चमेली : लेकिन उस्ताद मुझे तो.....

असगर : बस पांच मिनट में खत्म हुई जाती है एक रिहर्सल ।

चमेली : लेकिन मैं नाचूंगी ! इधर ऊधर इतनी टोलियाँ बैठी हैं ।

असगर : नहीं, तुम जरा अपना पार्ट गा दो, नाचने की ज़रूरत नहीं ।

चमेली : जैसी आपकी मर्जी, लेकिन मुझे जल्दी है ।

असगर : बस पांच मिनट । हां भई चलो !

[सभी फिर गाते हैं]

रामू कुम्हार की नटखट छोरी,

नटखट छोरी

सिमट सिमट सरमावे—

रेसमका जब लहँगा फूले

छतरीसी बन जावे

मफ़जल—

भोलीसी गोरी तोरी पतली कमरिया

पतली कमरिया, बाली उमरिया

बाली उमरिया, न लागे नजरिया

नजर लगे कुम्हलावे

चमेली—

ओ रे कलालके नटखट छोरे

नटखट छोरे

तूफ़ान से पहले

क्यों तू बढ़ता आवे—

[कोरस]

रामू कुम्हारकी नटखट छोरी

सिमट सिमट सरमावे—

चमेली—

डलियासे मोरी कमरिया लचक गई ।

अफ़ज़ल—

अंगिया मसक गई बिजली चमक गई ।

चमेली—

सीनेसे जालिम चुनरिया खिसक गई ।

अफ़ज़ल—

सीनोंमें आग लगावे ।

चमेली—

ओरे कलालके नटखट छोरे

[पृष्ठ भूमिमें बहुत लोग इकट्ठे हो जाते हैं । चमेली चहल गाना बन्द कर देती है ।]

चमेली : नहीं उस्ताद, देखो सभी लोग इधर आ रहे हैं । मैं नहीं ठहर सकती एक पल भी यहां । मुझे अपना पार्ट याद है । तुम इनको याद करा दो ।

[चली जाती है । दो एक शागिर्दोंको साथ लिये हुए पक्के गानेके उस्ताद मीर हातिम अलिखां आते हैं]

हातिम अलिखां : अरे भई, यह क्या भीड़ भाड़ इकट्ठी कर रखी है । क्या हो रहा है ।

[प्रायः सभी लोग उठकर उस्तादका अभिवादन करते हैं]

पक्का गाना

नईम : आइए उस्ताद बैठिए । यों ही, कुछ गाना वाना, गुप शप हो रही थी ।
आइए ! तशरीफ़ रखिए ! कहिए, किधरसे आए ?

हातिम अलीखां : अरे भाई, रेडियो स्टेशनसे आ रहे हैं । प्रोग्राम था । पक्का गाना और पन्द्रह मिनट ! मैंने बीस बार कहा है कि सरकार पन्द्रह मिनटपे तो खयालका बोल भी नहीं उठता, कमसे कम आध घंटा तो समय दिया करें । लेकिन उन बेचारोंको सुनने वालोंका ध्यान रखना पड़ता है । इन फिल्मी गानोंने तो लोगोंके मज़ाकका सत्यानास कर दिया है ।

नईम : इस फिल्मी दौरमें आर्ट पक्का गाना बन कर रह गया है ।

हातिम अलीखां : और फिर भाई, सच कह दें, हमें बंधे वक्त और बंधी-जगहका गाना पसन्द नहीं ।

असगर हुसेन : कौनसा खयाल गाया ।

हातिम : गाया । अँह ! गानेको जी ही किसका चाहता था । तबलची अचानक बीमार हो गया । दूसरेकी ड्यूटी न थी । गुफ़फ़ार मेरे साथ बजाया करता था । सो वह भी छुट्टी पर ।

गुफ़फ़ार : आदाब अज़ उस्ताद !

हातिम : अच्छा, तुम यहाँ डटे हो और हमें उस नौबिखियेसे माथा फोड़ना पड़ा ! शीशेके पीछे एनाउंसर साहिब बैठे थे । चेहरे पर उनके बेज़ारी टपकती थी । वह इस ताकमें ये कब यह आ...आ...ई...ई...खत्म हो और औरतोंके प्रोग्रामका एनाउंसमेंट करें ।

नईम : [हँसकर] और कुछ न सही दो चार मीठी रसीली आवाज़ें तो सुननेको मिल जाती हैं ।

गुफ़फ़ार : देखनेको भी तो हमारी सूरतोंकी निस्वत ।...

हातिम अलीखां : दूसरा प्रोग्राम सवा नौ बजेका । सो शायद किसी बड़े अफ़सरकी तकरीर थी, इसलिथे कट गया । अब साढ़े ग्याह बजे फिर

तूफान से पहले

एक प्रोग्राम है। वहाँ बैठे रहनेके बदले, हमने सोचा ज़रा चौपाटी हो की सैर कर आँ।

असगर हुसेन : तो आइये बैठिये। गफ़ार भी यहीं हैं। साज़ भी मौजूद है। तानपूरा लीजिए और सुनाइये कोई एक दो बोल ख़यालके। न बँधा वक्त है, न बँधी जगह है।

हातिम अलीखां : अरे भाई.....

असगर हुसेन : नहीं साहिब, अब तो सुने बिना न जाने देंगे। हो जाए कोई एमन कल्यानके एक दो बोल।

हातिम अलीखां : मुझे फिर रेडियो स्टेशन जाना है।

असगर हुसेन : हम सब आपके साथ चलेंगे।

[तानपूरा सग़्गल लेते हैं]

असगर हुसेन : लो ग़फ़ार, ज़रा तबला और इरशाद तुम भी सारंगी उठाओ।
हाँ, उस्ताद...

[उस्मान हातिम अलीखां तानपूरा लेकर बैठ जाते हैं। उसके कान उमेठ और स्वर मिचकार एक दो बार खँखारते हैं और फिर गाना आरम्भ करते हैं।]

अरी, परी आली पिया बिना

[खयालके पहले बोलके साथही पृष्ठ-भूमिमें टोलियाँ छँटनी शुरू हो जाती हैं और अस्थायी ख़त्म होते होते वहाँ, प्रो. नईम, और उनके कुछेक साथियों के अतिरिक्त कोई नहीं रहता। उस्ताद साहिबके तान-पलटे पूरे जोरों पर होते हैं, जब पर्दा गिर जाता है]



